श्री

श्रीमते यमुनाचार्याय नमः

आलवन्दार स्तोत्रम्

पुस्तक वाजपेयी

मत श्री [illegible] मन्दिर

कानपुर महानगर

श्री वैकुं०ठ

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥
॥ श्रीगोदारङ्गमन्नारपरब्रह्मणे नमः ॥

श्रीमद्यामुनाचार्यस्वामिप्रणीतम्

श्रीचतुश्लोकिसमवेतम्

आलवन्दारस्तोत्रम्

(स्तोत्ररत्नम्)

हिन्दीटीकासहितम्

सम्पादक :
केशवप्रपन्न शास्त्री

श्रीरङ्गनाथ प्रेस, वृन्दावन (उ० प्र०)

बन्सतपञ्चमी
संवत् २०३६

न्योछावर
भगवत् प्रेम

स्पृ्ग्रि ... श्री...

परिचय

卐

आलवन्दार स्तोत्र (स्तोत्ररत्न) के रचयिता श्रीयामुनाचार्य
मी ने दक्षिण भारत स्थित चोल देश के अन्तर्गत वीरनारायणपुर
३०७८ वें वर्ष धातृनाम संवत्सर कर्कटमास पूर्णिमा उत्तराषाढ़
त्र में अवतार लेकर सुशोभित किया। आपके पिता श्रीईश्वरमुनि
मातुःश्री रङ्गनायकी नामक थे। आपके पितामह श्रीनाथमुनि
मी थे। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की गुरुपरम्परा में आप महानुभावों का
सादर स्मरण किया जाता है।

आपको मन्त्रोपदेश तथा पञ्चसंस्कार श्रीनाथमुनि स्वामीजी
प्त हुआ। तत्व एवं पुरुषार्थ का उपदेश श्रीपुण्डरीक्षस्वामीजी से
योग रहस्य की शिक्षा कुरुहावलप्पन् स्वामी जी से आपने प्राप्त
ी। श्रीराममिश्र स्वामी जी से सन्यासाश्रम की दीक्षा के साथ
पदेश ग्रहण किया। इसीलिये गुरुपरम्परा में श्रीमन्नाथमुनि,
ण्डरीकाक्ष, श्रीराममिश्र के पश्चात् श्रीयामुनाचार्य स्वामी का
आता है।

आपके चार पुत्र थे—तिरुवरङ्गप्पेरुमालरैयर, देयवत्तुक्करशु-
, पिल्लैयरशुनम्बि, शोट्टैनम्बि। आपके कुछ प्रधान शिष्य—
हापूर्ण, श्रीशैलपूर्ण, श्रीगोष्ठीपूर्ण श्रीमालाधर, तेवारियाण्डान्, वान-
यियाण्डान्, ईश्वराण्डान्, जीयराण्डान्, आलवन्दारालवान्, तिरु-
प्पन्, श्रीकाञ्चीपूर्ण श्रीवकुलाभरण सोमयाजी आदि। श्रीरामा-

नुजाचार्य जी भी आपसे अत्यन्त प्रभावित हो शिक्षा ग्रहण हेतु आ थे लेकिन आपके अन्तिम संस्कार के ही दर्शन कर सके।

श्रीयामुनाचार्य जी १२५ वर्ष तक इस भूतल को अपने ज्ञान लोक से प्रकाशित करते रहे।

आपके निर्मित ग्रन्थ इस प्रकार हैं—आलवन्दार स्तोत्रम्, सिद्धि त्रय, श्रीगीतार्थसंग्रह (श्लोक बद्ध) एवं व्याख्या आगमप्रामाण्य, पुरु निर्णय, चतुःश्लोकी।

आलवन्दार स्तोत्ररत्न के द्वारा श्रीयामुनाचार्यजी ने भगवान आत्म निवेदन पूर्वक प्रार्थना की है। आप भगवान के स्वरूप रूप गु विभुतियों के वर्णन के साथ शरणागति पूर्वक भगवद् भागवद्गाचा कैङ्कर्य एवं परमाभक्ति को ही जीव का परमप्राप्तव्य मानते हैं। परम दैन्यभरी हुई यह भगवद् स्तुति भगवान एवं भागवतों को इतनी प्रि हुई कि इसे "स्तोत्ररत्न" की संज्ञा दी गई। यही कारण हैं कि सभ संप्रदाय के भक्तों का कंठहार बन गयी।

इस स्तोत्र पर अनेक टीकाएँ हुई, यहाँ तक कि भाष्य भी उप लब्ध है। यह इसकी लोकप्रियता का निदर्शन है। सर्व साधारण व स्तोत्रार्थ का आनन्द लाभ हो सके इस हेतु यह प्रयास किया गया है यदि भागवतों को कुछ भी रुचिकर हुआ तो यह प्रयास सफल समझ जायेगा। यह भी संभव है कि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो कृपया सुधी जन सुधार लेंगे।

श्रीविष्णुसहस्रनाम का पाठ दैनिक प्रत्येक वैष्णव को करणी है एतदर्थ उसे भी यहाँ रखा गया है।

भागवतानुचर—
केशवप्रपन्नः

✽ श्रीगोदारङ्गमन्नारपरब्रह्मणे नमः ✽

✽ श्रीमते रामानुजाय नमः ✽
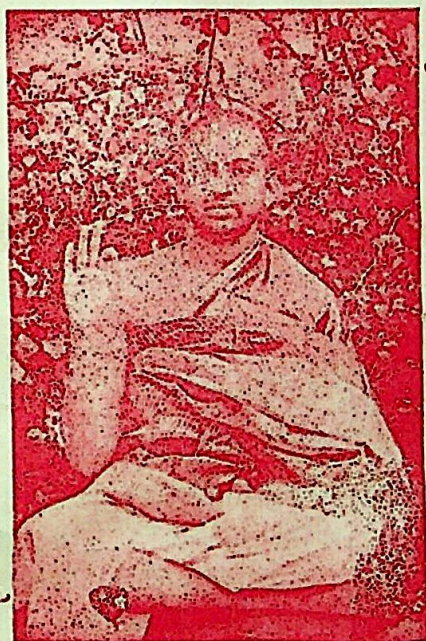
वर्तमानगोवर्द्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित

श्रीरङ्गाचार्य स्वामीजी महाराज

तनयन श्लोक

वाधूलाब्धिसरोजसौम्यविकसत् रङ्गार्यदौहित्रकं,
श्रीमद्कोविदश्रीनिवासतनयं सौशील्यभूषान्वितम् ।
श्रीमद्वेङ्कटयोगिराजचरणे न्यस्तात्मभावं मुदा,
श्रीरङ्गार्यगुरुं भजामि सततं कारुण्यवारांनिधिम् ॥
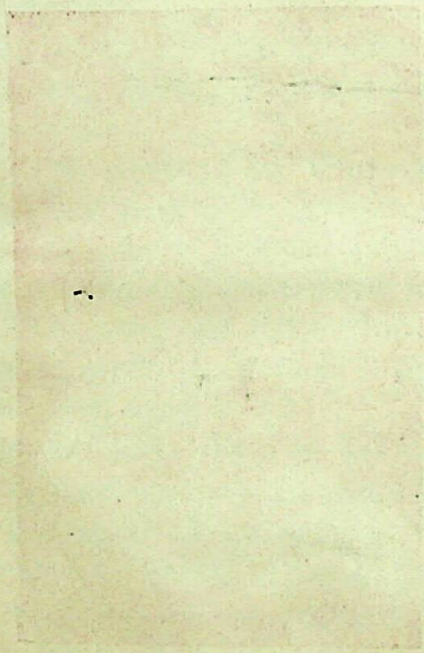
श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमन्महामुनिश्रीयामुनाचार्यप्रणीतम्

आलवन्दारस्तोत्ररत्नम्

(सटीकम्)

卐

भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य द्वारा श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी की प्रशंसा आरम्भ के तीन श्लोकों में की गयी है।

स्वादयन्निह सर्वेषां त्रय्यन्तार्थं सुदुर्ग्रहम्।
स्तोत्रयामास योगीन्द्रस्तं वन्दे यामुनाह्वयम् ॥१॥

अर्थ—ग्रहण एवं धारण करने में अत्यन्त कठिन वेदत्रयी के अन्तभाग उपनिषद् अर्थात् वेदान्तशास्त्र के अर्थ को इस संसार के जीवों को अति आस्वादन करने योग्य बनाते हुये योगियों में श्रेष्ठ जिन श्रीयामुनाचार्यजी ने इस भगवद् स्तोत्रकी रचना की उन श्रीयामुनाचार्य स्वामी का मैं वन्दन करता हूँ। यह स्वामी जी का तनयन पद्य है ॥१॥

नमो नमो यामुनाय यामुनाय नमो नमः।
नमो नमो यामुनाय यामुनाय नमो नमः ॥२॥

अर्थ—अत्यन्त आदर एवं भक्ति होने से श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी को बार बार साष्टांग प्रणाम है ॥२॥

नमो यामुनपादाब्जरेणुभिः पावितात्मने ।
विदिताखिलवेद्याय गुरवे विदितात्मने ॥३॥

अर्थ—श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी के चरण कमलों की रज से पवित्र आत्मा, सम्पूर्ण यथार्थ ज्ञान के जानकार आत्म साक्षात्कार करने वाले मेरे गुरु जी (श्रीमहापूर्ण स्वामी जी) को नमस्कार है। इस पद्य से श्रीरामानुजाचार्य स्वामी द्वारा अपने गुरुदेव श्रीमहापूर्ण स्वामी की स्तुति की गई है ॥३॥

इस पद्यमें श्रीनाथमुनि स्वामीकी ज्ञान वैराग्य भक्तिका वर्णन है।

नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्टज्ञानवैराग्यराशये ।
नाथाय मुनयेऽगाधभगवद्भक्तिसिन्धवे ॥४॥

अर्थ—चिंतना करने में अशक्य, अत्याश्चर्यमय एवं बिना क्लेश से (भगवान एवं श्रीशठकोपस्वामी की कृपा से) प्राप्त ज्ञान, वैराग्य के साकार राशि एवं भगवद् भक्ति के समुद्र श्रीनाथमुनि स्वामी जी के लिये हमारी नमस्कार है।

उपर्युक्त पद्य से श्रीयामुनाचार्यजी ने अपने परम गुरु श्रीनाथमुनि स्वामी जी को प्रणाम की है ॥४॥

श्रीनाथमुनि स्वामी जी के ज्ञान, भक्ति का वर्णन है।

तस्मै नमो मधुजिदङ्घ्रिसरोजतत्त्व-
ज्ञानानुरागमहिमातिशयान्तसीम्ने ।
नाथाय नाथमुनयेऽत्र परत्र चापि
नित्यं यदीयचरणौ शरणं मदीयम् ॥५॥

अर्थ—इस संसार एवं परमपद में सदैव के लिये जिन श्रीनाथ-मुनि स्वामी जी के दोनों चरण कमल मेरे शरण्य हैं। उन मधुदैत्य के मारने वाले भगवान मधुसूदन के कमल सदृश चरणों के यथार्थज्ञान तथा प्रेमाधिक्यातिशय की चरम सीमा रूप मेरे स्वामी श्रीनाथ मुनि जी के लिये बारम्बार प्रणाम है ॥५॥

वसंतलिका छन्द

श्रीनाथ मुनि जी के लिये पुनः नमस्कार।

भूयो नमोऽपरिमिताच्युतभक्तितत्व-
ज्ञानामृताब्धिपरिवाहशुभैर्वचोभिः ।
लोकेऽवतीर्णपरमार्थसमग्रभक्ति-
योगाय नाथमुनये यमिनां वराय ।६॥

अर्थ—सीमातीत, अगाध भगवान् के प्रति भक्ति एवं तत्व ज्ञान रूपी अमृत सागर के प्रवाह के समान माङ्गलिक दिव्य बचनों से इस संसार में प्रवर्तित किया है परम पुरुषार्थ रूप परिपूर्ण भक्ति योग जिन्होंने ऐसे योगियों में श्रेष्ठ श्रीनाथमुनि स्वामी जी को फिर से बार बार नमस्कार करता हूँ ॥६॥

श्रीपराशर महर्षि की वन्दना—

तत्वेन यश्चिदचिदीश्वरतत्स्वभाव-
भोगापवर्गतदुपायगतीरुदारः ।
सन्दर्शयन्निरमिमीत पुराणरत्नं
तस्मै नमो मुनिवराय पराशराय ॥७॥

अर्थ—उदार स्वभाव जिन महर्षि श्रेष्ठ ने चेतन, अचेतन और

ईश्वर तथा उनके स्वभाव, विषयों का अनुभव, मोक्ष एवं इन सब
प्राप्त करने के उपाय तथा मरणोपरान्त प्राणी के जाने का मार्ग उन
अवस्थाएँ आदि सब बातों को यथार्थ रूप से दिखाते हुये पुराणों
रत्न जिस विष्णुपुराण को रचा ऐसे मुनियों में अग्रगण्य श्रीपराश
महर्षि को हमारा सादर नमस्कार है ।।७।।

सहस्रगीतिकर्ता प्रपन्नजनकूटस्थ श्रीशठकोपमुनि की वन्दना--

माता पिता युवतयस्तनया विभूति-
स्सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य नः कुशलपतेर्वकुलाभिरामं
श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ।।८।।

अर्थ--श्रीयामुनाचार्य स्वामी कहते हैं कि मेरे वंशधरों अथ
सम्बन्ध वालों को श्रीशठकोपस्वामी जी के युगल चरण कमल ही सर्व
के लिये माता, पिता, स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदि सब कुछ हैं अर्था
सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदाता हैं । ऐसे हमारे श्रीवैष्णवों के कुल के आद्य अ
एव 'प्रपन्नजनकूटस्थ' मौलश्री के पुष्पों से शोभित श्रीशठकोप स्वा
जी के देदीप्यमान प्रसिद्ध युगल चरणों को शिर से प्रणाम करता हूँ ।

(श्रीशठकोप स्वामी जी श्रीपराशर महर्षि से विशेष उपकृ
हुये । इन्होंने सहस्रगीति आदि चार दिव्य प्रबन्धों को रचा, श्रीना
मुनि स्वामी को योगदशा में सम्पूर्ण तत्वार्थ, ज्ञातव्य विषयोंका उपदे
करके उनके गुरु बने, गुरु परम्परा में भगवान् के बाद आपका
स्थान है अतएव आप भगवच्चरण स्वरूप ही हैं अतएव सभी श्रीवैष्ण
के पूज्य एवं स्मरणीय वन्दनीय होने से 'प्रपन्नजनकूटस्थ' भी अ
हैं ।)

श्रीभगवच्चरण वन्दना

यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मि-
न्नस्मन्मनोरथपथस्सकलस्समेति ।
स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदैवतं तत्,
पादारविन्दमरविन्दविलोचनस्य ॥९॥

अर्थ—भगवान के श्रीचरण कमल मेरे तथा वेदों के शिरोभाग पर शोभायमान हैं, अर्थात् भगवान अपने वात्सल्य गुण के वश हो भक्तों के शिर को अपने चरण कमलों से शोभित करते हैं। जिन भगवतपादारविन्दों में हमारी सम्पूर्ण अभिलाषाओं का प्रवाह निहित है। अर्थात् भक्तों के लिये वे ही परमपुरुषार्थ हैं।

वे प्रभुपादारविन्द ही हमारे लिये परम्परा से प्राप्त पैतृकधन और हमारे कुल के आराध्यदेव अतएव अवश्य सेवनीय, स्वयं फल-स्वरूप हैं। ऐसे कमलदललोचन भगवान के कमल सदृश सुकोमल युगल चरण की स्तुति करता हूँ ॥९॥

भगवत्स्तुति के लिये प्रवृत्त संकोच पर स्वयं को धिक्कारते हैं।

तत्वेन यस्य महिमार्णवशीकराणुः-
शक्यो न मातुमपि शर्वपिता महाद्यैः ।
कर्तुं तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय
मह्यं नमोऽस्तु कवये निरपत्रपाय ॥१०॥

अर्थ—वेद प्रतिपाद्य अतएव प्रसिद्ध भगवान की महिमा रूपी समुद्र के कणों का भी एक अति स्वल्प भाग शिव, ब्रह्मा जी आदिकों से भी यथार्थ रूप से जाना नहीं जा सकता है ऐसे महान् महिमामय

उन भगवान के वैभव को वखान करने के लिये उद्यत अल्पज्ञ ने
निर्लज्ज मुझको नमस्कार हो, अर्थात् मुझे धिक्कार ही है ।।१०।।

भगवदनुग्रह प्राप्तकर पुनः स्तुति करते हैं—

यद्वा श्रमावधि यथामति वाप्यशक्तः-
स्तौम्येवमेव खलुतेऽपि सदा स्तुवन्तः ।
वेदाश्चतुर्मुखमुखाश्च महार्णवान्तः
को मज्जतोरणुकुलाचलयोर्विशेषः ? ।।११।।

अर्थ—विकल्प से पुनः कहते हैं कि हे प्रभो ! शक्तिहीन होने
भी मैं पूर्ण शान्त क्लान्त हो जाने तक अथवा अपनी बुद्धि के अनुस
आपकी स्तुति करूँगा । सदा स्तुति में तत्पर रहने वाले चारों वे
ब्रह्मा जी आदिक भी इसी प्रकार से यथामति ही तो स्तुति करते है
तब अगाध और महान् सागर में एक छोटे से भाग में डूब जाने व
एक अणु और विशाल पर्वत में अन्तर ही क्या है ? अर्थात् जब
आदिक भगवान की महान् महिमा का वर्णन यथार्थ रूप से सर्व
नहीं कर पाते तब मैं तो अज्ञहूँ । दोनों का अन्तर समान रहा अतः
भी यथामति आपकी स्तुति करता हूँ ।।११।।

श्रीभगवत्सन्निधि में विज्ञापन—

किञ्चैष शक्त्यतिशयेन न तेऽनुकम्प्य-
स्तोतापि तु स्तुतिकृतेन परिश्रमेण ।
तत्र श्रमस्तु सुलभो मम मन्दबुद्धे-
रित्युद्यमोऽयमुचितो मम चाब्जनेत्र ! ।।१२।।

अर्थ—अथवा यह स्तुति करने वाला मैं अपने अन्दर आप
गुणगान एवं महिमा की यथार्थ वर्णन करने की शक्ति के आधिक्य

ज्ञ ने के कारण आपकी दया का पात्र वनने की योग्यता नहीं रखता हूँ।
वल्कि आपकी महिमा का वखान करने में होने वाले परिश्रमसे
ापकी कृपा का पात्र बनूंगा।

हे कमलनयन प्रभो ! आपकी प्रार्थना करने में मुझ मन्दबुद्धि
ो अतिशीघ्र परिश्रम हो जायेगा अतएव मेरे द्वारा आपकी स्तुति करना
मुचित ही है। मेरी अशक्ति एवं प्रार्थना करते समय होने वाले श्रम
न्य दयनीय दशा को देखकर आप मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो जायेंगे
तः मेरा स्तुति करना ही आपकी प्रसन्नता का सुलभ मार्ग है ॥१२॥

आश्रितवात्सल्य एवं सर्वभूत सुहृदता का वर्णन—

नावेक्षसे यदि ततो भुवनान्यमूनि
नालं प्रभो ! भवितुमेव कुतः प्रवृत्तिः ।
एवं निसर्ग सुहृदि त्वयि सर्वजन्तोः
स्वामिन्न चित्रमिदमाश्रितवत्सलत्वम् ॥१३॥

अर्थ—हे प्रभो ! सृष्टि के पहिले अचेतन रूप में पड़े इन जीवों
ो यदि आप अपने निर्हेतुक कृपा कटाक्ष से अबलोकन नहीं करते तो
 सब लोक उत्पन्न ही कैसे हो सकते थे। जब उत्पन्न ही न होते तो
इनमें स्थिति, प्रवृत्ति, निवृत्ति भी कैसे संभव थी अर्थात् सर्वथा असंभव
ी। इससे ज्ञात होता है कि जीव को शरीर और इन्द्रियाँ तथा उनसे
ानाविध भोग मोक्षोपयोगी कर्म करने की शक्ति भी भगवत्कृपा
टाक्षसे ही प्राप्त होती है। हे स्वामिन् ! इस तरहसे आप सब प्राणियों
ा स्वाभाविक रूपसे कल्याण चाहने वाले हो। आपमें अपने आश्रितों
के प्रति यह वात्सल्य भाव नाम के गुण आश्चर्यकारक नहीं है।
वआश्रित वात्सल्य गुण तो आप में स्वभाव सिद्ध है ॥१३॥

अब परतत्व निर्णय का उपक्रम करते हैं—

स्वाभाविकानवधिकातिशयेशितृत्वं
नारायण ! त्वयि न मृष्यति वैदिकः कः ।
ब्रह्मा शिवश्शतमखः परमस्वराडि-
त्येतेऽपि यस्य महिमार्णवविप्रुषस्ते ॥१४॥

अर्थ—समस्त चेतनों के आश्रय हे नारायण ! ब्रह्मा, शि इन्द्र एवं मुक्त जीव ये सब आपकी महिमा रूपी सागर के कण मा हैं। ऐसे महा महिमामय आपके विषय में स्वभावसिद्ध तथा सीमाती अतिशय ऐश्वर्यको कौन वैदिक (वेदको प्रमाण मानने वाला आस्तिव न मानेगा ? अर्थात् जो व्यक्ति आपके स्वाभाविक निःसीम अतिश स्वामित्व को न माने वह आस्तिक ही नहीं है ॥१४॥

नारायण ही परतत्व हैं—

कश्श्रीः श्रियः परमसत्वसमाश्रयः कः
कः पुण्डरीकनयनः पुरुषोत्तमः कः ।
कस्यायुतायुतशतैककलांशकांशे
विश्वं विचित्रचिदचित्प्रविभागवृत्तम् ॥१५॥

अर्थ—श्रीलक्ष्मी जी की भी श्री अर्थात् शोभा, आश्रयणी कौन है ? रजोगुण और तमोगुण से असंपृक्त शुद्ध सत्व गुण का आश्र कौन है ? कमल के सदृश विशाल एवं मनोहर नेत्रों वाला कौन है किसके हजारों करोड़ों भागों के एक भाग के भी अत्यल्प भाग अर्थात् किनके महान् श्रीविग्रह के एक एक रोंये के छिद्र में असंख ब्रह्माण्ड लटके हुये हैं। इन ब्रह्माण्डों में भी देव, मनुष्य तिर्यक् स्थाव

उनके अनुरूप ज्ञान क्रिया इसी प्रकार अचेतन वर्ग भी भोग्य, भोगो-पकरण भोगस्थान रूप विविध विचित्रता को लिये हुये है ? इस समस्त वैचित्र्य का आश्रय कौन है ? इन प्रश्नों का एक मात्र उत्तर है कि हे नारायण आप में ही ये सब लक्षण घट रहे हैं अतएव आप ही परतत्व पर देवता हैं। अन्य नहीं है ।।१५।।

अब पुराणोक्तरीत्या भगवान का परतत्व वर्णन करते हैं।

वेदापहारगुरुपातकदैत्यपीडा-
द्यापद्विमोचनमहिष्ठफलप्रदानैः ।
कोऽन्यः प्रजापशुपती परिपाति कस्य
पादोदकेन स शिवस्स्वशिरोधृतेन ।।१६।।

अर्थ—वेदों को चुराना, ब्रह्महत्या रूप महान् पातक दैत्यों से उत्पन्न पीडा आदिक आपत्तियों से मुक्त करने एवं यथेष्ट श्रेष्ठ फलों के प्रदान करने से आपके सिवाय कौन दूसरा है जो ब्रह्मा जी और शिव जी की रक्षा एवं पालन करता है ? वह प्रसिद्ध शिवजी भी अपने मस्तक पर किसके चरण प्रक्षालितजल को धारण कर विशुद्ध मंगल-मय हुये हैं ? अर्थात् ऐसे नारायण ही हैं अतएव वही परतत्व है।

विशेष—परतत्व में ब्रह्मा और शिव के पक्षपाती उन्हें भी पर-देवता कहते हैं लेकिन कसौटी पर ये परतत्व नहीं ठहरते कारण रक्ष्य से रक्षक श्रेष्ठ होता है। ब्रह्मा, शिव की नारायण ने रक्षा की अतएव नारायण ही परदेवता हैं।

वेदापहार—भगवान से वेदों का उपदेश पाकर ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना करते थे। एक वार मधु और कैरभ नामक दैत्य वेदों को चुराकर समुद्र के तल में जाछिपे। ब्रह्मा जी बड़े दुखी हुये। रोते हुये भगवान के पास आये। भगवान ने हयग्रीव रूप धारण कर उन दैत्यों

का वध किया और वेदों को लाकर पुनः ब्रह्माजी को उपदेश कि
इस प्रकार ब्रह्मा जी को संकट से बचाया।

गुरुपातक—पहले ब्रह्मा और शिव दोनों के पाँच मुख थे
शिवजी ने अपने नख से ब्रह्मा जी का एक सिर काट लिया। शि
को ब्रह्महत्या लग गई। पिता जी का शिरःकपाल शिवजी के ह
चिपक गया, छूटे ही नहीं। तब देवर्षियों ने कहा कि आप इस
में भीख मांगिये,जब यह भर जायगा तब यह स्वयं गिर जायगा।
जी ने वैसा ही किया। बहुत दिन हो गये कपाल न भरे न गिरे।
जी बड़े दुःखी घूमते घामते बदरीनाथ धाम पहुँच गये भगवान से
वृत्तान्त कहा भगवान ने भीख में वह कपाल भर दिया, कपाल
गिर पड़ा जिसका एक अंश आज भी वहाँ है, जिस पर लोग
पितरोंको पिण्ड प्रदान करते हैं। इस प्रकार गुरु यानी पिता व अन्त
के प्रति किये पाप के प्रति संकेत करता है 'गुरुपातक' शब्द।

दैत्य पीडा—एक वार शिव जी का अन्धक नाम असुर से
हुआ। शिव जी के शस्त्रों से अन्धक के शरीर से जो भी रक्तप
गिरे उससे एक और असुर बन जाय। इस प्रकार रण भूमि अन्
असुरों से भर गयी। शिव जी बड़े परेशान हुये। अन्त में वे नार
की शरण में गये। भगवान ने शुष्क रेवती नामक एक देवता को
दिया उसने उन अन्धकों के शरीर से निकलने वाले रक्त बिन्दुओं
पी लिया। इससे असुरों की सृष्टि बन्द हो गई और अन्धक क
आसानी से हो गया।

वृकासुर यानी भस्मासुर की भी ऐसी ही कहानी है। वृका
तप करके शिव जी को प्रसन्न कर वर प्राप्त किया कि 'मैं
शिर पर हाथ रखूँ वह तत्काल जल जाये, उस दैत्य ने शिव
ऊपर हाथ रखना चाहा। दुःखी शिवजी भगे वहाँ से और नाराय
शरण ली। भगवान वहीं प्रकट हुये और अपने मीठे वचनों

र का हाथ स्वयं उसी के मस्तक पर रखवाया जिससे वह स्वयं
मि हो गया और शिव जी की रक्षा हो गई ।।१६।।

पूर्वोक्त अर्थ को ही प्रकारान्तर से कहते हैं—

कस्योदरे हरविरिञ्चिमुखः प्रपञ्चः
को रक्षतीममजनिष्ट च कस्य नाभे ।
क्रान्त्वा निगीर्य पुनरुद्गिरति त्वदन्यः
कः केन चैष परवानिति शक्यशङ्कः ।।१७।।

अर्थ—शिव जी, ब्रह्मा जी आदिक चेतनों सहित समस्त जड
पालनात्मक विश्व प्रलयावस्था में किसके पेट में समा जाता है ? (प्रल-
यकाल में समस्त कार्य पदार्थ अपने कारण में लीन होते चले जाते हैं
अन्त में एक मात्र सर्व कारण कारण भगवान ही मात्र शेष रह जाते
) उस समय शिव, ब्रह्मा आदि का नाम भी नहीं रहता है। इस
र विचित्र सृष्टि की रक्षा कौन करता है ? किसकी नाभि से यह सृष्टि
क्तपञ्च उत्पन्न हुआ है ? हे नारायण आप से अन्य ऐसा कौन है जो
एक ही समय में इस विश्व को नापकर निगलकर पुनः उसको बाहर
निकाल दे। यह विश्व प्रपञ्च आपके सिवा दूसरे किस से परतन्त्र या
कोनाथ करके शङ्का करने लायक हो सकता है अर्थात् अन्य से नहीं
केवल नारायण से ही विश्व सनाथ है ।।१७।।

त्वां शीलरूपचरितैः परमप्रकृष्ट-
सत्त्वेन सात्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः ।
प्रख्यातदैवपरमार्थविदां मतैश्च
नैवासुरप्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ।।१८।।

अर्थ—हे भगवन् ! आपके शील आदिक कल्याण गुणों के सम्प्र-
दाय, आपका अप्राकृतिक दिव्यमङ्गलविग्रह, अतिमानुषचरित्र, परा-
श्रेष्ठ शुद्ध सत्वादि गुणों की आश्रयता अकाट्य अतएव प्रबल शास्त्र
एवं प्रसिद्ध भगवत् तत्व को ठीक ठीक प्रकार से जानने वाले महा-
त्माओं तथा उनके सिद्धान्तों आदि साधनों के रहते हुये भी असुर
प्रकृति वाले नास्तिक जन आपको यथार्थ रूप से या आंशिक रूप
भी जानने में समर्थ नहीं हो पाते हैं ॥१८॥

दुर्ज्ञेय परतत्व के अन्वेषण में व्यर्थ समय क्यों लगाया जाय
शंका का समाधान करते हैं।

उल्लङ्घितत्रिविधसीमसमातिशायि-
सम्भावनं तव परिब्रढिमस्वभावम् ।
मायाबलेन भवताऽपि निगूह्यमानं
पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्यभावाः ॥१९॥

अर्थ—देश, काल, वस्तु इन तीन सीमाओं को उल्लङ्घन क
वाले अर्थात् एक ही काल में प्रभु सम्पूर्ण देशों में रहते है। अन्य व
जिस काल में होगी उससे अन्य काल में न होगी लेकिन ईश्वर
काल में समान रूप से रहते हैं। प्रत्येक वस्तु एक समय में वही व
रहती है दूसरी नहीं हो जाती लेकिन ईश्वर सम्पूर्ण वस्तुओं में वि
मान है इसलिये सम्पूर्ण वस्तु स्वरूप है, इसलिये वह त्रिविध, व
परिच्छेद से रहित है।

ईश्वर के समान अन्य नहीं और ईश्वर से अधिक नहीं अ
इन दोनों संभावनाओं से रहित है। आपके परत्व स्वरूप को माया
बल से आप के द्वारा छिपा लिये जाने पर भी देवतान्तर, उपाया

अथवा फलान्तर में अपने चित्त को न लगाकर केवल आप में ही चित्त लगाने वाले कोई कोई महात्मा लोग सदैव देखते हैं ॥१९॥

भगवान के सर्वेश्वरत्व का वर्णन करते है—

वंशस्थ छन्दः—

यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यद्-
दशोत्तराण्यावरणानि यानि च ।
गुणाः प्रधानं पुरुषः परं पदं
परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः ॥२०॥

अर्थ – सात लोक नीचे और सात लोक ऊपर दोनों को मिला कर एक ब्रह्माण्ड होता है। ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड, उनमें रहने वाले अधिकारी तथा देव, मनुष्य, तिर्यक्, आदिक प्राणि-समूह उनके भोग्य, भोगोपकरण भोगस्थान रूप प्राकृत वस्तुएँ, तथा उन अण्डों के बाहर दस दस गुने अधिक विस्तृत कोट वाले आवरण (जल, तेज, वायु आकाश, अहंकार, महत्तत्व एवं अव्यक्त) से सब तथा सत्व रज तम तीन गुण, इन गुणों की आश्रय प्रकृति एवं जीवात्म वर्ग तथा परमपद श्रीवैकुण्ठलोक इनमें अचेतन से श्रेष्ठ जीवात्मवर्ग है, उनसे भी श्रेष्ठ मुक्तात्मवर्ग या नित्यसूरि वर्ग है और उनसे भी श्रेष्ठ आपका दिव्य-मंगलविग्रह यह सब आपकी ही तो विभूति हैं, आपका ही तो ऐश्वर्य है और आप इन सबके मालिक हैं, अतएव आप ही सर्व्वेश्वर हैं। अन्य नहीं ॥२०॥

विभूतियों के समान आपके कल्याणगुण भी अनन्त हैं--

वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचि-
मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरस्समः ।

कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावत-
स्समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः ॥२१॥

अर्थ—हे भगवन् आप स्वभाव से ही आश्रितों के परतन्त्र रूप वशी गुण के आश्रय हो, आप परमोदार स्वभाव वाले, सौशील्य गुण वाले, सरल एवं कपट रहित, मन वाणी शरीर से विशुद्ध कोमल स्वभाव, दया गुण से युक्त मधुर स्वभाव, किसी से विचलित न होने वाले स्थिर, भेद भाव रहित हो सबसे समान भाव से मिलने वाले उपकार करने वाले, आश्रितों के द्वारा की गई स्वल्प सेवा को स्मरण रखने वाले आदिक अनन्त समस्त कल्याण गुण रूपी अमृत के महान् सागर हैं ॥२१॥

भगवान के अनन्त गुणों में प्रत्येक गुण भी अनन्तता लिये है।

उपर्युपर्यब्जभुवोऽपि पूरुषान्
प्रकल्प्य ते ये शतमित्यनुक्रमात् ।
गिरस्त्वदेकैकगुणावधीप्सया
सदा स्थिता नोद्यमतोऽतिशेरते ॥२२॥

अर्थ—वेदों की वाणी एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा इस क्रम से ऊपर बढ़ते हुये कमल से उत्पन्न चतुर्मुख ब्रह्मा पर्यन्त को भी मनुष्य कोटि में बता कर आपके एक एक गुण की सीमा निर्धारित करने की इच्छा से वे वेदवाक्य 'ते ये शतम्' इत्यादि आनन्दवल्ली उपनिषद् के वाक्यानुसार कहते हुये एक सर्वविध सम्पन्न मनुष्य के आनन्द से सौगुण अधिक मनुष्य गन्धर्व का आनन्द उससे भी सौ गुण अधिक देव गन्धर्व का आनन्द इस प्रकार पितृ, देव, देवेन्द्र, बृहस्पति प्रजापति (ब्रह्मा) का आनन्द माना गया है फिर भी ब्रह्मानन्द का

खोज न हो सकी। ब्रह्मानन्द तो मन वाणी से परे होने से अवाङ्मनस अगोचर ही रहा गया और केवल आनन्द गुण ही नहीं सम्पूर्ण गुण विभूतियाँ ऐसी ही हैं। इस प्रकार वेद वाक्य आपके गुणों की सीमा का बखान करने की इच्छा से सदा तत्पर रहते हुये भी हे भगवन् आप के गुणों की प्रारम्भिक दशा के वर्णन से आगे नहीं बढ़ पाते हैं ॥२२॥

किं पुनर्न्याय से आपकी महामहिमा का ही वर्णन करते हैं।

त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थिति-
प्रणाशसंसारविमोचनादयः ।
भवन्ति लीलाविधयश्च वैदिका-
स्त्वदीयगम्भीरमनोऽनुसारिणः ॥२३॥

अर्थ—हे भगवन् ! संसार की सृष्टि करना उसकी रक्षा करना एवं संहार करना तथा मोक्ष देना आदि सब आपकी लीलाएँ ही हैं और ये लीलाएँ आपके भक्तों के लिये, भक्तजनों के उपयोगार्थ की जाती हैं। वेदों से प्रतिपाद्य विधियाँ भी आपके भक्तों के गम्भीर (गहरे) मन के अनुसरण करने वाली होती हैं ॥२३॥

महामहिमामय प्रभु को नमस्कार किया जाता है

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये ।
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे ॥२४॥

अर्थ—मुक्त जीवों के भी मन वाणी से प्रत्यक्ष न होने वाले आपके लिये बारम्वार नमस्कार है। अनन्य भक्तों की मन वाणी से

ही गोचर होने वाले आपके लिये पुनः बारम्बार प्रणाम है ! सीमा
महान् ऐश्वर्य वाले ईश्वर के लिये बारम्बार नमस्कार है। अ
दया के एकमात्र सागर आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥२४॥

अब सांग शरणागति की जाती है—

उपजाति छन्दः—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे ।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिश्शरण्यः
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥२५॥

अर्थ—हेसब जड़ चेतनों की रक्षा करने वाले प्रभो ! मैं ध
निष्ठावान नहीं हूँ और आत्मज्ञानी भी नहीं हूँ। आपके चरणकम
पूर्ण एवं अनन्य भक्ति भाव वाला भी मैं नहीं हूँ। इस प्रकार मैं
प्रकार के मोक्ष साधनों से शून्य अतएव अकिंचन हूँ। दूसरा भी
मेरी रक्षा करने वाला नहीं है अतएव मैं अनन्यगति हूँ अतएव
श्रीचरणकमलों के मूल में ही शरण ग्रहण करता हूँ ॥२५॥

जीव अपने पापों को स्मरण कर भगवत्सन्निधि में केवल रों रहा

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि ।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे ॥२६॥

अर्थ—हे भोग और मोक्ष के प्रदान करने वाले मुकुन्द !

ौर शिष्टजनों के द्वारा निन्दित ऐसे पाप कर्म कौन से हैं जो मैंने इस सार में हजारों बार नहीं किये हैं। ऐसे भयंकर महान् पापों को रने वाला मैं अब जब वे पाप पककर फल देने की अवस्थामें पहुँच गये तब मैं अपने दुःखों से रक्षा हेतु अन्य रक्षक को न पा आपके सामने रहा हूँ ॥२६॥

चिरकाल से दुःखों को भोग रहे हो आज क्यों कर रो रहे हो ? सका समाधान करते हैं।

निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्त-
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः ।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः ॥२७॥

अर्थ—हे अनन्त गुण विभूति वाले प्रभो ! मैं इस संसार रूपी मुद्र के अन्दर डूब रहा हूँ इस प्रकार डूबते हुये मुझ को बहुत दिनों बाद किनारे की तरह आप मिले हो। हे भगवन् ! आप समग्रज्ञान ल ऐश्वर्य शक्ति आदि से युक्त हो, ऐसे आपको भी मैं आपकी दया श्रेष्ठ पात्र अब मिल गया हूँ। हे नाथ ! अब मुझ जैसा उत्तम दया पात्र अन्यत्र आपको कहाँ मिलेगा इसलिये इस पापी पर अपनी या दृष्टि कर ही दीजिये ॥२६॥

इसी क्षण मुझे स्वीकार क्यों नहीं करते नाथ ! इसका समाधान रते हैं—

अभूतपूर्वं मम भावि किं वा
सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम् ।

किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां
पराभवो नाथ न तेऽनुरूपः ॥२८॥

अर्थ—हे नाथ! मुझे अभी तक न मिला हो ऐसा कौ दुःख है अर्थात् सब प्रकार के सम्पूर्ण दुःखों को मैंने भोगा है। दु तो मेरा सह जन्मा है अर्थात् जब से मैं तब से दुःख मेरे साथ लग अतः सब प्रकारके दुःखों को सहन कर ही रहा हूँ, लेकिन आपके शु आपकी शरण में आने वाले दुखियों का दुःख दूर न हो शरणागत अपमान आपके लिये शोभा नहीं देता प्रभो! ॥२८॥

अनन्यगति होने से पुनः अपनाने की प्रार्थना—

वंशस्थ छन्द—

निरासकस्यापि न तावदुत्सहे
महेश हातुं तव पादपङ्कजम्।
रुषा निरस्तोऽपि शिशुस्स्तनन्धयो
न जातु मातुश्चरणौ जिहासति ॥२९॥

अर्थ—हेमहेश! हे सर्व्वेश्वर! आप मुझे भले ही दुद और अपने से दूर हटा दें लेकिन मैं आपके चरणकमलों को में किसी भी प्रकार समर्थ नहीं हो सकता हूँ नाथ!

दुधमुहा बच्चा माता के द्वारा क्रोध के कारण दूर हटा जाने पर भी अपनी जननी के चरणों को कभी भी त्यागना नहीं है। अनन्यगति जो ठहरा। वैसा ही मैं हूँ प्रभो! ॥२९॥

प्रपन्न को भगवत् पादारविन्द ही अनन्यगति अतएव अपरित्याज

तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे
निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति।

स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे
मधुव्रतो नेक्षुरकं हि वीक्षते ॥३०॥

अर्थ—हे प्रभो ! अमृत रस को प्रवाहित करने वाले आपके रणकमलों में प्रविष्ट मन वाले लोग अन्य किसी वस्तुको कैसे चाहेंगे ? क भी है मकरन्द रस से भरे हुये कमल के रहते हुये केवल उसके ु रस पर जीवन व्यतीत करने वाला भ्रमर गन्ने के अल्प रस को ागपा दाख छुहारों को) निश्चय ही नहीं देखेगा ॥३०॥

भगवत्प्राप्ति का सरलतम उपाय—

त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचि-
द्यथा तथावाऽपि सकृत्कृतोऽञ्जलिः ।
तदैव मुष्णात्यशुभान्यशेषत-
श्शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते ॥३१॥

अर्थ—हे श्रीमन्नारायण ! आपके चरणकमलों को उद्देश्यकर भी भी किसी समय किसी के द्वारा जैसे तैसे भी एक ही वार की ई अंजलि (हाथ जोड़ना) तत्काल पापों का सम्पूर्ण रूप से विनाश र देती है और शुभ अर्थात् इस लोक में सर्वविध कल्याण और पर-ोक में परमपद का सम्पूर्ण ऐश्वर्य दे देती है । वह अंजलि कभी नष्ट हीं होती अर्थात् परमपद में जीव भगवद् दर्शनों से विभोर होकर दैव नमो नमः कहते हुये हाथ जोड़े रहे, बस भगवत् प्राप्ति का सबसे रलतम उपाय अंजलि मुद्रा ही है ॥३१॥

भगवच्चरणों में प्रेम का वैभव प्रतिपादन करते हैं—

उदीर्णसंसारदवाशुशुक्षणिं
क्षणेन निर्वाप्य परां च निर्वृतिम् ।

प्रयच्छति त्वच्चरणरुणाम्बुज-
द्वयानुरागामृतसिन्धुशीकरः ॥३२॥

अर्थ—हे नाथ ! आपके लाल-लाल युगल चरणारविन्दो
प्रति किये जाने वाले प्रेमरूपी अमृत समुद्र का एक विन्दु बढ़तीगव
संसाररूपी अग्नि को क्षणमात्र में बुझाकर शान्त कर देता है, साथज
परा शान्ति अर्थात् मोक्ष सुख को भी भक्तों को प्रदान कर देता ब
यह है आपके चरणों में किये जाने वाले प्रेम की अपार महिमा ॥३

अब भगवद्दर्शन एवं उनकी नित्य सेवा की तीव्र लालसा का वर्थं
सत्रह श्लोकों से करते हैं—

विलासविक्रान्तपरावरालयं
नमस्यदार्तिक्षपणे कृतक्षणम् ।
धनं मदीयं तव पादपङ्कजं
कदा नु साक्षात्करवाणि चक्षुषा ॥३३॥

अर्थ—भगवान ने अपनी लीला मात्र से ब्रह्मादि देवताओंह
ब्रह्मलोक आदि को और नीचे के मनुष्य लोक आदिकों को अनेभ
करके जिन अपने चरणों से नाप लिया था। इससे भगवान ने अ
सौलभ्य गुण का प्रकाश किया। तथा जिन आपके चरणों में नमस्
करने वालों के दुःख को दूर करने में सदा सावधान और मेरे
आपके चरणकमलों का मैं अपने नेत्रोंसे कब दर्शन करूँगा प्रभो ॥३

कदा पुनश्शङ्खरथाङ्गकल्पक-
ध्वजारविन्दाङ्कुशवज्रलाञ्छनम् ।

त्रिविक्रम ! त्वच्चरणाम्बुजद्वयं
मदीयमूर्धानमलङ्करिष्यति ॥३४॥

अर्थ—हे त्रिविक्रम ! तीनपग में तीन लोकों को नापने वाले भगवन् ! आपके चरणकमलों की जोड़ी जिसमें शंख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, कमल, अंकुश, वज्र आदिक चिह्न विराजमान है मेरे शिर को कब सुशोभित करेगी ? ॥३४॥

अब 'कुलक' के द्वारा महावैभवशाली प्रभु की नित्यसेवा की प्रार्थना करते हैं।

विराजमालोज्ज्वलपीतवाससं
स्मितातसीसूनसमामलच्छविम् ।
निमग्ननाभिं तनुमध्यमुल्लस-
द्विशालवक्षःस्थलशोभिलक्षणम् ॥३५॥

अर्थ—भगवान के वक्ष पर शोभित उज्वल दिव्य पीताम्बर से शोभायमान, विकसित अलसी के पुष्प के समान निर्मल कान्ति वाले, गहरी नाभिवाले, पतले मध्यभाग वाले, ऊँचे और विस्तृत छाती से शोभायमान अर्थात् श्रीवत्सचिह्न से युक्त वक्षवाले ॥३५॥

भगवान की भुजाओं का अनुभव करते हैं—

चकासतं ज्याकिणकर्कशैः शुभै-
श्चतुर्भिराजानुविलम्बिभिर्भुजैः ।
प्रियावतंसोत्पलकर्णभूषणः
श्लथालकाबन्धविमर्दशंसिभिः ॥३६॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप घुटनों तक लम्बायमान, धनुर्
प्रत्यञ्चा के घर्षण से बने व्रण से कठोर, अपनी दिव्य पटरानि
कर्णफूल, नीलकमल जैसा कान के आभरण तथा बिखरे हुये घुंघ
अलकावलियों के संमर्द के सूचक, मङ्गलमय चार भुजाओं से शो
हैं ॥३६॥

भगवान के कंठ तथा श्रीमुख का वर्णन—

उदग्रपीनांसविलम्बिकुण्डला-
लकावलीबन्धुरकम्बुकन्धरम् ।
मुखश्रिया न्यक्कृतपूर्णनिर्मला-
मृतांशुबिम्बाम्बुरुहोज्ज्वलश्रियम् ॥३७॥

अर्थ—ऊँचे तथा सुपुष्ट मांसल कंधों तक लटकने वाले क
के कुण्डल एवं घुंघराले केशपाशों से सुशोभित शङ्ख के समान
दार कंठ से युक्त तथा श्रीमुख कमल की शोभा से तिरस्कृत कर
है पूर्ण निर्मल चन्द्रमण्डल तथा कमल के समान उज्वल विका
सम्पन्न मुखमण्डल वाले आपकी ॥३७॥

अब भगवान के नयन, भ्रू, अधरादि अवभवों का वर्णन करते

प्रबुद्धमुग्धाम्बुजचारुलोचनं
सविभ्रमभ्रूलतमुज्वलाधरम् ।
शुचिस्मितं कोमलगण्डमुन्नसं
ललाटपर्यन्तविलम्बितालकम् ॥३८॥

अर्थ—प्रभो ! तुरन्त विकसित नव कमल पुष्प की तरह सु
नेत्र, विलास से युक्त शोभित लता के समान भ्रू (भौंह) वाले,

दिव्य अधर वाले, परिशुद्ध मन्द मुस्कान, कोमल चिक्कण कपोल, उन्नत नासिका एवं ललाट भाग तक लटकने वाले घुंघराली अलकों वाले आप हैं ॥३८॥

भगवान के दिव्य आभूषण एवं आयुधों का वर्णन करते हैं—

स्फुरत्किरीटाङ्गदहारकण्ठिका-
मणीन्द्रकाञ्चीगुणनूपुरादिभिः ।
रथाङ्गशङ्खासिगदाधनुर्वरै-
र्लसत्तुलस्या वनमालयोज्ज्वलम् ॥३९॥

अर्थ—हे नाथ ! दीप्त किरीट मुकुट, बाजूवन्द, हार, कंठा, कौस्तुभमणि करधनी, पायजेव आदिक दिव्य आभूषणों से एवं चक्र, शङ्ख, तलवार, गदा, धनुष, आदि दिव्य आयुधों से तथा शोभायमान तुलसी से युक्त आपाद लटकने वाली वनमाला से प्रकाशमान आप हैं ॥३९॥

श्रीमहालक्ष्मी जी का वर्णन युग्मक से करते हैं—

चकर्थ यस्या भवनं भुजान्तरं
तव प्रियं धाम यदीयजन्मभूः ।
जगत्समस्तं यदपाङ्गसंश्रयं
यदर्थमम्भोधिरमन्थ्यबन्धि च ॥४०॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप ने अपने वक्षस्थलको जिनका निवास स्थल बना दिया । जिन श्रीमहालक्ष्मीजी की जन्म भूमि क्षीर समुद्र आपका प्रिय वास स्थान है। सम्पूर्ण विश्व जिनकी कृपाकटाक्ष के आधीन रहता है। जिनको प्राप्त करने के लिये समुद्र का मन्थन किया गया और सेतुबन्धन हुआ ॥४०॥

श्रीमहालक्ष्मीजी का पुनः वर्णन करते हैं—

स्ववैश्वरूप्येण सदाऽनुभूतया-
प्यपूर्ववद्विस्मयमादधानया ।
गुणेन रूपेण विलासचेष्टितै-
स्सदा तवैवोचितया तव श्रिया ॥४१॥

अर्थ—हे नाथ ! आप अपने विश्वरूप अवस्था को तथा पर व्यूह विभवादि अवस्थाओं दिव्य विग्रहों को लेकर लक्ष्मीजी नित्यानुभव करते रहते हैं फिर भी लक्ष्मीजी कभी नीरस नहीं दि देती हैं वल्कि सदैव नित्यनवीन स्वरूपिणी आश्चर्यमयी अनुभूत रहती हैं। वे अपने गुण (ईश्वरशेषत्व, ईश्वरपारतन्त्र्य, कारुण्य) आदि सौन्दर्य, लीला व्यापारादि से सदैव आपके ही ल आपके सर्वस्वभूत, आपके शोभागुण को संवर्धन करने वाली लक्ष्म आपकी परिपूर्ण सहयोगिनी है ॥४१॥

श्रीशेषजी के वर्णन का उपक्रम—

तया सहासीनमनन्तभोगिनि
प्रकृष्टविज्ञानबलैकधामनि ।
फणामणिव्रातमयूखमण्डल-
प्रकाशमानोदरदिव्यधामनि ॥४२॥

अर्थ—पूर्वोक्त वैभव से युक्त श्रीलक्ष्मीजी के साथ श्रेष्ठ ज्ञा बल आदि के एक मात्र आधार और अपने फणों पर रहने मणियों के समूह की कान्ति से प्रकाशित मध्य भाग ऐसे दिव्यधा शेषनाग पर विराजमान हे प्रभो ! आपकी सेवा करता हुआ मैं हर्ष निर्भर होऊँगा ॥४२॥

अब शेषजी का वर्णन करते हैं—

निवासशय्यासनपादुकांशुको-
पधानवर्षातपवारणादिभिः ।
शरीरभेदैस्तव शेषतां गतै-
र्यथोचितं शेष इतीरिते जनैः ॥४३॥

अर्थ—भगवान के निवासयोग्य दिव्य मन्दिर, शयन करने के ये कोमल शय्या, बैठने के लायक दिव्य सिंहासन, चलते समय रों की रक्षा हेतु खडाऊँ, ओढ़ने को दिव्यवस्त्र, तकिया, वर्षा और प बचाने वाला दिव्य छत्र तथा और भी अनेक प्रकार से सेवा के पयुक्त यथोचित रीति से आपके शेषत्व को प्राप्त अर्थात् अपने स्वार्थ बिना दूसरे के लाभ के लिए सेवा तत्पर होना इस प्रकार उन उन व्य शरीरों को प्राप्तकर भगवान की सेवा करने के कारण भक्तजनों द्वारा 'शेष' नाम से पुकारे जाते हैं ॥४३॥

श्रीगरुड़जी का स्मरण करतेहैं—

दासस्सखा वाहनमासनं ध्वजो
यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः ।
उपस्थितं तेन पुरो गरुत्मता
त्वदङ्घ्रिसम्मर्दकिणाङ्कशोभिना ॥४४॥

अर्थ—वेदत्रयी रूपी गरुड़जी आपके दास, मित्र, यात्रा के धन वाहन, आसन, ध्वजा, चँदोवा एवं पंखा बन कर सेवा करते । (भगवान के) आश्रितों पर आई हुयी आपत्ति को दूर करने के लिये शीघ्रता वश गरुड़जी के दोनों बगलों को दवाते हैं जिससे उनके

दोनों ओर चिह्न हो गया है। ऐसे गरुड़जी हाथ जोड़े सदैव सेवसम्
अवसर की प्रतीक्षामें आपके सामने ही खड़े रहते हैं ऐसे आपकी ॥

श्रीविष्वक्सेन जी का अनुसंधान करते हैं—

त्वदीयभुक्तोज्झितशेषभोजिना
त्वया निसृष्टात्मभरेण यद्यथा ।
प्रियेण सेनापतिना न्यवेदि त-
त्तथाऽनुजानन्तमुदारवीक्षणैः ॥४५॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके भोजन कर लेने बाद बचे हुये
प्रसाद का भोजन करने वाले तथा आपके द्वारा सोंपे गये उभय वि
की देखरेख रूपी अपने कार्य के प्रति सतत् तत्पर, आपके अति
सेनानायक श्रीविष्वक्सेन जी द्वारा भगवान की सन्निधि में जो
जिस प्रकार से निवेदन किया जाता है भगवान उस कार्य को
प्रकार से स्वीकार कर लेते हैं। अति प्रिय की बात टाली नहीं
सकती है। भगवान अपने मधुर कटाक्षपात से उस कार्य को
की आज्ञा देते हैं। ऐसे आपको ॥४५॥

अन्य परिजनों का वर्णनहै—

हताखिलक्लेशमलैः स्वभावतः
स्सदानुकूल्यैकरसैस्तवोचितैः ।
गृहीततत्तत्परिचारसाधनै-
र्निषेव्यमाणं सचिवैर्यथोचितम् ॥४६॥

अर्थ—हे नाथ ! स्वभाव से ही विनष्ट हो गये हैं समस्त

(अविद्या, अहंकार, अभिनिवेश, राग और द्वेष पाँच) और संसार सम्बन्ध रूप मल जिनके, आपके कैंकर्य (सेवा) में ही रसानुभूति करने वाले, आपकी सेवा के उपयुक्त उचित, उन उन सेवोपकरणों को अपने हाथों में यथोचित रूप से सेवा करने वाले ऐसे मन्त्रियों से परिवृत आपकी नित्य सेवा करते हुये मैं कब आपको आनन्दित करूँगा ? प्रभो ! ॥४६॥

भगवान एवं श्रीलक्ष्मी जी का वर्णन है—

अपूर्वनानारसभावनिर्भर-
प्रबुद्धया मुग्धविदग्धलीलया ।
क्षणाणुवत्क्षिप्तपरादिकालया
प्रहर्षयन्तं महिषीं महाभुजम् ॥४७॥

अर्थ— हे नाथ ! सरस भक्तों के लिये भगवान के दिव्यमंगल-विग्रह बल, सौन्दर्य आदि गुण ही विशेष भोग्य होते हैं। अतएव अपूर्व नाना प्रकार के रसों एवं भावों से निरन्तर चलने वाली, ब्रह्मा के आयुष्य वाला 'पर' काल भी भगवान की लोकोत्तर दिव्यलीलाओं के अनुभव करते समय एक क्षण की भाँति अतिशीघ्र व्यतीत हो जाता है अतएव क्षणके अत्यन्त अल्प भाग की तरह बीत जाने वाले पर काल वाली, अति मनोहर चातुर्यपूर्ण लीलाओं से पटरानी श्रीलक्ष्मीजी को आनन्दित करने वाले आजानुबाहु आपकी नित्य सेवा करने में कब आपको आनन्दित करूँगा प्रभो ! ॥४७॥

भगवत्सौन्दर्य का वर्णन—

अचिन्त्यदिव्याद्भुतनित्ययौवन-
स्वभावलावण्यमयामृतोदधिम् ।

श्रियःश्रियं भक्तजनैकजीवितं
समर्थमापत्सखमर्थिकल्पकम् ॥४८॥

अर्थ—कल्पनातीत, अप्राकृत, अत्याश्चर्यजनक, सदा एक
रहने वाला जो यौवन अर्थात् भगवान की रमणीय आकृति,
लावण्य के आधिक्य वाला अमृत का सागर है प्रभु का दिव्य
अर्थात् भगवान यौवन और लावण्य के समुद्र हैं। भक्तों को भ
का यौवन तथा रमणीयता अत्यन्त भोग्य हैं।

आप श्रीजी के भी शोभा संवर्धक हैं। तथा भक्तजनों के
नाधार, सर्वशक्तिमान्, आश्रितों पर आपत्ति आने पर उनका उ
करने वाले मित्र, याचकों को कल्पवृक्ष की तरह उनके सम्पूर्ण
रथों को पूर्ण करने वाले आपकी सेवा करते हुये कब आपको
करूँगा नाथ ! ॥४८॥

भगवान से नित्य सेवा की माँग करते हैं—

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरं,
प्रशान्तनिश्शेषमनोरथान्तरः ।
कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः
प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितः ॥४९॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप समस्त वैभव से युक्त निरुपाधिक
हो। ऐसे आपका ही मैं निरन्तर व्यवधान रहित कैंकर्य करता
साधनान्तर और फलान्तर तो दूर रहे, भगवत्सेवा को अन्य प
साधन होने की आशा करना भी सहय नहीं ऐसी समस्त इच्छा
एकदम विरहित होकर तथा पूर्वोक्तप्रकार से अविच्छिन्न नित्य

कैंकर्य परायण हो अपने जीवन को सनाथ बनाता हुआ मैं कब हर्षित करूँगा ।।४९।।

नैच्यानुसंधान पूर्वक स्वयं को धिक्कारते है—

मालनी छन्दः—

धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं
परमपुरुष ! योऽहं योगिवर्याग्रगण्यैः ।
विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं
तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः ।।५०।।

अर्थ—हे परम पुरुष ! नारायण ! स्वेच्छाचारी मैं योगियों में अग्रगण्य ब्रह्मा, शिव, सनकादिकों के द्वारा भी मन से ध्यान करने में भी अति कठिन आपके कैंकर्य को चाहता हूँ। उस सम्पूर्ण अशुद्धियों की खान, नम्रता रहित, अथवा सदाचार्य शिक्षा से रहित, दया रहित लज्जाशून्य मुझको धिक्कार है ।।५०।।

अब निर्हेतुककृपा बल से मुझे अपनाइये नाथ ! यह प्रार्थना करते हैं।

वैतालीय छन्दः—

अपराधसहस्रभाजनं
पतितं भीमभवार्णवोदरे ।
अगतिं शरणागतं हरे
कृपया केवलमात्मसात्कुरु ।।५१।।

अर्थ—भक्तों के अपराधों को न देखते हुये उनके दुःख हरण करने वाले हे हरे ! भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों मे वाणी, शरीर तीनों करणों से, भगवदपचार, भागवतापचार असह्यापचार रूप असंख्य अपराधों का पात्र, भयंकर संसार रूपी स अन्दर पड़े रहने वाला और उससे बचने के उपाय को न जानने गत्यन्तर शून्य शरणागत मुझ को केवल अपनी कृपा के सहारे अ लीजिये प्रभो ! ॥५१॥

अब केवल भगवत्कृपा कटाक्ष को ही मांगते हैं—

अविवेकघनान्धदिङ्मुखे
बहुधा सन्ततदुःखवर्षिणि ।
भगवन्भवदुर्दिने पथस्स्ख-
लितं मामवलोकयाच्युत ॥५२॥

अर्थ—हे भगवन् सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त, भक्तो को कभ न त्यागने वाले हे अच्युत ! मैं उन उन वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप से रहित हूँ। मुझे देह और आत्मा, जीवात्मा और परमात्मा, त और उपादेय, बन्ध और मोक्ष आदि के यथार्थ ज्ञान का अभाव रहा है। अतएव अविवेक रूपी मेघों से आच्छादित होने से अन्ध पूर्ण दिशा वाले लगातार त्रितापरूपी दुःखों को बरसाने वाले रूपी दुर्दिन में, सन्मार्ग से च्युत मुझको अपनी कृपा दृष्टि से दे दीजिये नाथ ! ॥५२॥

अपनी दयनीय दशा का वर्णन फिर करते हैं—

न मृषा परमार्थमेव मे
शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः ।

यदि मे न दयिष्यसे ततो
दयनीयस्तव नाथ ! दुर्लभः ॥५३॥

अर्थ—हे नाथ ! मैं आपकी सन्निधि में एक विज्ञापन करता हूँ कि थोड़ा सा भी झूँठ नहीं एकदम सत्य ही है। उसे सुनिये तो ही। अगर मुझ पर आप दया नहीं करेंगे तो हे प्रभो ! फिर आपको दया करने का उपयुक्त उचित पात्र मिलना कठिन हो जायेगा दया निधे ! मुझ जैसे दयनीय पर दया करने के इस सुयोग को न गंवाइये अन्यथा आपको पछताना पड़ेगा ॥५३॥

अपनी दयनीयदशा का ही वर्णन करते हैं—

तदहं त्वदृते न नाथवान्
मदृते त्वं दयनीयवान्न च ।
विधिनिर्मितमेतदन्वयं
भगवन्पालय मास्म जीहपः ॥५४॥

अर्थ—हे ऐश्वर्यशालिन् ! इसलिये मैं आपके बिना अन्य किसी नाथवान नहीं हूँ मेरा अन्य कोई स्वामी नहीं है। आप भी मेरे बिना अन्य किसी दया पाने वाले से युक्त नहीं हैं अर्थात् आपकी दया का उपयुक्त पात्र मेरे समान पापी अन्य कोई नहीं मिलेगा। अतः आपके और मेरे दोनों के बीच यह रक्ष्यरक्षक भाव सम्बन्ध दैवयोग से ही घटित हुआ है। दैवयोगसे बने इस सम्बन्ध का पालन कीजिये। मेरी रक्षा कर इस सम्बन्धको बनाये रखिये। इसे त्यागिये नहीं ॥५४॥

अब श्रीस्वामी जी अपने सम्बन्ध पालन की विज्ञप्ति करते है।

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा
गुणतोऽसानि यथातथाविधः ।
तदयं तव पादपद्मयो-
रहमद्यैव मया समर्पितः ॥५५॥

अर्थ—मैं शरीर आदिकों में से चाहे जो और गुण से जैसा हो जाऊँ इस विषय में मेरा कोई आग्रह नहीं है। अर्थात् इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण इनमें से प्रत्येक को उन उन दर्शन आत्मा मानते हैं। फिर भी इस सम्प्रदाय में आचार्यों ने आत्म अजड़, अणु ज्ञानरूपी एवं ज्ञानगुणक, नित्य, निर्विकार, भगवच्छे सहित ज्ञातृत्व युक्त बताया है। उस आत्म वस्तु को भगवान के कमलोंमें कैङ्कर्य हेतु समर्पित कर देना ही आत्मा की मुख्योपादेय अतः यह आत्मा मैं और मेरा जो कुछ भी है सब आपके चरणकों में अभी मेरे द्वारा समर्पित है ॥५५॥

अब आत्मसमर्पण में अपने अनधिकार को कहते है—

मम नाथ ! यदस्ति योऽस्म्यहं
सकलं तद्धि तवैव माधव ।
नियतस्वमिति प्रबुद्धधी
रथवा किं नु समर्पयामि ते ॥५६॥

अर्थ—हे मा=लक्ष्मी के धव=पति हे लक्ष्मीपते ! हे मैंने नासमझी में आत्म समर्पण की बात कही लेकिन अब मैंने चार्यों की सत्संगति करके कुछ समझा तब ज्ञात हुआ कि जं

हुए हैं (शरीर, इन्द्रिय, मन, धन, जन आदि) तथा मैं (आत्मा) कुछ आपकी ही वस्तु है न कि मेरी इस प्रकार बुद्धि जग जाने में आपको कौन सी नवीन वस्तु अर्पण करूँ प्रभो ! अतः समर्पण बात गलत ही थी ।।५६।।

अब श्रीस्वामी जी भगवान से परम भक्ति की मांग करते हैं-

अवबोधितवानिमां यथा
मयि नित्यां भवदीयतां स्वयम् ।
कृपयैवमनन्यभोग्यतां
भगवन्भक्तिमपि प्रयच्छ मे ।।५७।।

अर्थ—हे भगवन् ! मुझ में सदैव रहने वाले आपके इस शेषत्व सा कि स्वयं आपने ही मुझको समझाया है उसकी तरह उसी से भगवान के सिवाय अन्य में भोग्यता को न पाने वाली परम अपनी परमपुरुषार्थ रूपा भक्ति को भी मुझे दीजिये । क्योंकि त्सेवा के लिये प्रेमारूपा भक्ति का होना आवश्यक है । इसी प्रकार रूप और भगवत्स्वरूप के ज्ञान के बिना भक्ति नहीं बन सकती तः परमभक्ति प्रदान कीजिये ।।५७।।

अब भागवत् शेषत्व की याचना करते हैं—

तव दास्यसुखैकसङ्गिनां
भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे ।
इतरावसथेषु मास्म भू-
दपिमे जन्म चतुर्मुखात्मना ।।५८।।

अर्थ—हे नाथ ! आपकी दासता के सुख को ही एक आसङ्ग करने वाले भक्त महात्माओं के घरों में यदि मेरा एक के रूप में भी जन्म हो तो मेरे लिये वह श्रेष्ठ है। किन्तु हे प्रा आपके दास्य महारस के अनभिज्ञ, भगवच्चिन्तन से पराङ् अभागवतजनों के घरों में ब्रह्मा के रूप में भी जन्म मुझे पसन्द न इससे अभागवत जन सम्बन्ध से अरुचि एवं परमभागवतजनों के कीट जन्म का भी सम्बन्ध प्रार्थित किया गया है ।।५८।।

अब यदि ऐसा भी न हो तो भागवतों की कृपा कटाक्ष का ही बन जाऊँ।

वंशस्थ छन्दः—

सकृत्वदाकारविलोकनाशया
तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः ।
महात्मभिर्मामवलोक्यतां नय
क्षणेऽपि ते यद्विरहोऽतिदुस्सहः ।।५९।।

अर्थ—हे प्रभो एक वार आपके दिव्यमङ्गलविग्रह के रू देखने की आशा से सर्वश्रेष्ठ भोग ऐश्वर्य एवं मोक्ष को भी तृ समान तुच्छ समझने वाले महात्माओं के कृपा कटाक्ष का पात्र बना दीजिये नाथ ! क्योंकि अब मुझे आपका विरह अति दुःस गया है। अथवा जिन परम भागवत महात्माओं का विरह एक भरके लिये भी आपको अत्यन्त असहनीय होता है ऐसे महात्मा कृपादृष्टि का मैं पात्र बन जाऊँ भगवन् ! ।।५९।।

पूर्व पद्य में इष्ट प्राप्ति मांगी अब अनिष्टनिवृत्ति मांगते है

शिखरिणी छन्दः

न देहं न प्राणान्न च सुखमशेषाभिलषितं
न चात्मानं नान्यत्किमपि तव शेषत्वविभवात् ।
बहिर्भूतं नाथ क्षणमपि सहे यातु शतधा
विनाशं तत्सत्यं मधुमथन ! विज्ञापनमिदम् ।।६०।।

अर्थ—हे सर्वस्वामिन् ! एक मात्र भगवान के शेष रहना यह जो जीव का स्वरूप है अतएव इस भगवत्कैंकर्य रूप ऐश्वर्य से अलग रहने वाले, अपने शरीर, प्राण, समस्त प्राणियों से अभिलषित सुख एवं आत्मा तक को अथवा और दूसरी जो भी वस्तु हो मैं एक क्षण भर के लिये भी सहन नहीं कर सकता हूँ ।

हे नाथ ! आपके दासत्व से रहित पूर्वोक्त शरीर आदिक पदार्थ सैकड़ों टुकड़े क्यों न हो जायें अर्थात् उनसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं । हे मधु दैत्य संहारक ! आपकी सेवा में यह मेरी सच्ची विज्ञप्ति है ।६०।

भगवत्कैंकर्य निष्ठा में कारण भगवत्कृपा का वर्णन—

दुरन्तस्यानादेरपरिहरणीयस्य महतो
निहीनाचारोहं नृपशुरशुभस्यास्पदमपि ।
दयासिन्धो बन्धो निरवधिकवात्सल्यजलधे
तव स्मारं स्मारं गुणगणमितीच्छामि गतभीः ।।६१

अर्थ—हे दया के अथाह सागर ! सर्वविध बन्धो ! हे निःसीम वात्सल्यगुण के समुद्र ! मैं सदाचार से रहित मनुष्य शरीरधारी निरा-पशु ही हूँ । मैं अनन्त, अनादि एवं हटाने में अयोग्य, महान् पापों का आश्रय होने पर भी आपके अखिल कल्याण गुणों को बार-बार स्मरण करते हुये निर्भय होकर आपके शेषत्व की याचना कर रहा हूँ । आप

निरुपाधिक बन्धु होने से आपकी दया और वात्सल्यसे ही मेरा का
हो जायेगा ।।६१।।

श्रीस्वामी जी प्रार्थना करते हैं कि प्रभो ! मेरे हृदय में उस
को आप ही पैदा करें।

अनिच्छन्नप्येवं यदि पुनरपीच्छन्न गतभीः
तमश्छन्नछद्मस्तुतिवचनभङ्गीमरचयम् ।
तथापीत्थं रूपं वचनमवलम्ब्यापि कृपया
त्वमेवैवं भूतं धरणिधर मे शिक्षय मनः ।।६२।।

अर्थ—हे सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करने वाले सर्वलोक-नि
हक प्रभो ! रजोगुण और तमो गुण से घिरे हुये मैंने आपके शे
(दास भाव) की प्रबल इच्छा न रहने पर नकली इच्छा प्रकट क
हुये, कपट भाव से भरी हुई स्तुति बचन बोलने की भङ्गिमा को
नाया है। अर्थात् कपट भाव पूर्ण स्तुति की हैं फिर भी आप अ
निर्हेतुक कृपा से मेरे इन कपटपूर्ण वचनोंको ही स्वीकार करते हुए
चंचल मन को अपने प्रेम का पाठ आप स्वयं ही सिखा दीजिये
स्वामी ।।६२।।

मेरा तुम्हारा सम्बन्ध ही क्या जिससे मैं तुम्हारे मन को प्रेम
पाठ पढ़ाऊँ ? अतः अपने सम्बन्ध बताते हैं।

पिता त्वं माता स्त्वं दयित तनयस्त्वं प्रियसुहृत्-
त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरसि गतिश्चासि जगताम् ।
त्वदीयस्त्वद्भृत्यस्तव परिजनस्त्वद्गतिरहं
प्रपन्नश्चैवं सत्यहमपि तवैवास्मि हि भरः ।।६३।।

अर्थ—हे भगवन् ! आप ही इस संसार के पिता, माता, प्रिय पुत्र बाधव, प्रियमित्र, उपयोगी सदुपदेश देने वाले गुरु हैं। आप ही मेरे उपाय और उपेय हैं, मैं तो आपका ही शेष हूँ। आपका ही निरुपाधिक दास हूँ। आपका सर्वविध सेवक हूँ। मैं तो आपको ही रक्षक मानता हूँ और आपकी शरण में आया हूँ, ऐसी अवस्था में मैं आपका ही सब प्रकार से रक्ष्य हूँ।।६३।।

श्रीमन्नाथमुनि का वंशधर होने पर भी ज्ञान एवं आचरण से हीन मेरा आप ही उद्धार कीजिए नाथ !

जनित्वाऽहं वंशे महति जगति ख्यातयशसां
शुचीनां युक्तानां गुणपुरुषतत्त्वस्थितिविदाम् ।
निसर्गादेव त्वच्चरणकमलैकान्तमनसा-
मधोधः पापात्मा शरणद निमज्जामि तमसि ।६४।

अर्थ—हे सर्वरक्षक ! इस संसार में भगवत्कृपा भाजनों में प्रसिद्ध कीर्ति वाले, शरीर और मन से शुद्ध अर्थात् विषयों में भोग्य बुद्धि न रखने वाले, योगाभ्यास निरत, प्रकृति, आत्मा और ब्रह्म की स्वभाव प्रकृति को यथार्थ रूप से जानने वाले, स्वभाव से ही भगवान के चरणकमलों में निमग्न मन वाले श्रीमन्नाथमुनि के श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर पापात्मा मैं अज्ञानरूपी अन्धकार में नीचे से नीचे डूबता जा रहा हूँ अतः मेरी रक्षा कीजिये प्रभो !।।६४।।

मैं पापात्मा हूँ, का स्पष्टीकरण करते हैं।

अमर्यादः क्षुद्रश्चलमतिरसूयाप्रसवभूः
कृतघ्नो दुर्मानी स्मरपरवशो वञ्चनपरः ।

नृशंसः पापिष्ठः कथमहमितो दुःखजलधे-
रपारादुत्तीर्णस्तव परिचरेयं चरणयोः ॥६

अर्थ—हे नाथ ! मैं शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करने
क्षुद्र विषयों में आसक्त, चंचल बुद्धि, दूसरों के गुणों में दोष
वाला, उपकारों को भूलने वाला, स्वयं को महान समझने वाल
विरुद्ध कामासक्त, दूसरों को ठगने वाला, क्रूर कर्म करने वाला,
विध पापों को करने वाला, हूँ। अब इस अपार दुःख रूपी सा
पार होकर आपके चरणों की कैसे सेवा पाऊँगा प्रभो ! अतः मे
समस्त दुर्गुणों को दूर कीजिये ॥६५॥

भगवान के 'क्षमा' गुण का वर्णन करते हैं—

मालिनी छन्दः—

रघुवर यदभूस्त्वं तादृशो वायसस्य
प्रणत इति दयालुर्यच्च चैद्यस्य कृष्णः ।
प्रतिभवमपराद्धुर्मुग्धसायुज्यदोऽभू
वद किमुपदमागस्तस्य तेऽस्ति क्षमायाः ॥६

अर्थ—हे रघुवंश में श्रेष्ठ भगवन् राम ! काकवेषधारी इ
जयन्त के द्वारा जगज्जननी श्रीसीताजी के प्रति महा अपराध
जाने पर भी 'इसने मेरी शरणागति की है' यह मानकर आपने
अपराध को क्षमा कर दिया। हे भोले भाले श्रीकृष्ण ! जन्मजन्म
के अपराधी चेदिराज शिशुपाल को भी आपने सायुज्य मुक्ति
की। ऐसे परमदयालु नाथ ! यह तो वताइये कि मैंने ऐसे
अपराध किये हैं जो आपके क्षमा गुण के लक्ष्य न बन सके प्रभो
ही बता दीजिये ॥६६॥

यह ठीक है कि आप निरंकुश स्वतन्त्र हैं फिर भी शरणागत की रक्षा करना आपका व्रत है इसी से मेरी भी रक्षा कर लीजिये।

उपजाति छन्दः—

ननु प्रपन्नसकृदेव नाथ
तवाहमस्मीति च याचमानः।
तवानुकंप्यस्स्मरतः प्रतिज्ञां
मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते ? ॥६७॥

अर्थ—हे नाथ ! कोई भी व्यक्ति आपकी शरण में आकर यह कह कि 'मैं आपकी शरण हूँ, आपका ही शेष हूँ' एक वार भी शरणागति की प्रार्थना कर लेता है तो आप उस प्रतिज्ञा–'सकृदेव प्रपन्नाथ तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ के अनुसार उस प्राणी को सबसे निर्भय कर देते हैं यह आपका अटल व्रत है। उसी प्रतिज्ञाका स्मरण कर मैं भी तो आपकी दया का उचित पात्र हूँ। किन्तु शरणागत की रक्षा करना यह आपका व्रत केवल एक मुझ को ही छोड़ कर दूसरों के लिये ही क्यों कर है नाथ ! ॥६७॥

भागवत शेषत्व हेतु से ही मेरे ऊपर कृपा करिये यह कहते हैं

अकृत्रिमत्वच्चरणाविन्द-
प्रेमप्रकर्षावधिमात्मवन्तम् ।
पितामहं नाथमुनिं विलोक्य
प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा ॥६८॥

अर्थ—हे मेरे आचरण दोषों की ओर ध्यान न देकर केव
आपके चरणकमलों के प्रति स्वाभाविक प्रेम के आधिक्य की चर
सीमा स्वरूप, आत्म स्वरूप को यथार्थ रूप से जानने वाले, जन्म
और विद्या से मेरे पितामह श्रीमन्नाथ मुनि स्वामी जी की ओर देख
कर ही मुझ पर प्रसन्न हो जाइये प्रभो ! इस श्लोक से श्रीयामुनाचा
स्वामी अन्तिमोपाय आचार्य निष्ठा की श्रेष्ठता का दिग्दर्शन करा र
हैं ।।६८।।

यत्पदाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः ।
वस्तुतामुपयातोऽहं यामुनेयं नमामि तम् ।।६९।।

अर्थ– श्रीरामानुजाचार्य स्वामी का कथन है कि जिन परमा-
चार्य श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी के चरणकमलों का ध्यान करने से
मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये और श्रीमन्नारायण की नित्य सेवा प्राप्त
हो गई उन महामुनि श्रीयामुनाचार्य जी को मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता
हूँ ।।६९।। इति स्तोत्ररत्नम् ।।

वरदवल्लभास्तोत्रम्

चतुः श्लोकी

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः, फणिपतिः शय्यासनं वाहनं
वेदात्मा विहगेश्वरो यवनिका माया जगन्मोहिनी ।
ब्रह्मेशादिसुरव्रजः सदयितस्त्वद्दासदासीगणः
श्रीरित्येव च नाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम्

अर्थ—हे महालक्ष्मी जी पुरुषोत्तम भगवान नारायण ही आपके
पति हैं, फणिपति अनन्त आपकी शय्या, आसन है, वेदस्वरूप पक्षीराज

गरुड़ जी ही आपके वाहन हैं, जगत को मोहित करने वाली माया ही आपका पर्दा है। अपनी अपनी पत्नियों के सहित ब्रह्मा, शिव आदिक सम्पूर्ण देवगण आपके दास दासी गण हैं। आपका नाम श्री है। ऐसी आपका हम क्षुद्र जीव किस प्रकार से वर्णन कर सकते हैं ॥१॥

यस्यास्ते महिमानमात्मन इव त्वद्वल्लभोऽपिप्रभु-
र्नालं मातुमियत्तया निरवधिं नित्यानुकूलं स्वतः।
तां त्वां दास इति प्रपन्न इति च स्तोष्यास्यहं निर्भयो
लोकैकेश्वरि लोकनाथदयिते दान्ते दयां ते विदन् ॥

अर्थ—हे समस्त लोकों की एकमात्र स्वामिनी महालक्ष्मी जी हे समस्त संसार के स्वामी नारायण की प्रियतमे, सर्वशक्ति शाली आपके स्वामी भी अपने वैभव को जैसे नहीं नाप पाते वैसे ही आपके निःसीम एवं स्वाभाविक रूप से सदैव अनुकूल रहने वाली महिमा को 'यह इतनी ही है' इस प्रकार समझने में असमर्थ होते हैं। ऐसी महा-वैभव शालिनी आपकी प्रवाह युक्त दया मुझ कृपण पर जानते हुये 'मैं आपका दास हूँ' 'शरणागत हूँ' इस कारण से निर्भय होकर आपकी स्तुति करूँगा। अतः अन्य अपराधों की भाँति इस स्तुति के आरम्भ रूप को भी क्षमा करें ॥२॥

ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासन्धुक्षणाद्रक्ष्यते
नष्टं प्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं संप्रत्यनन्तोदयम् ।
श्रेयो नह्यरविन्दलोचनमनः कान्ताप्रसादादृते
संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां सम्भाव्यते कर्हिचित् ॥

अर्थ—हे मातः! अत्यल्प आपके कृपापूर्ण दृष्टिपात रूप अमृत प्रवाह से तीनों लोकों की रक्षा हो जाती है। क्योंकि पहले अर्थात्

आपके कृपा कटाक्ष प्राप्त करने से पूर्व उसके (कटाक्ष के) न प्राप्त
से यह त्रिकोली नष्ट प्राय हो गया था अब आपका किंचित् कृपा
प्राप्त कर अनन्त अभ्युदय को प्राप्त मनुष्यों का संसार कैवल्य
परमपद के भोगों में कल्याण तो कमलनयन भगवान की प्राण
श्रीमहालक्ष्मी जी के अनुग्रह के बिना अन्य किसी भी प्रकार से
संभव नहीं हो सकता है ॥३॥

शान्तानन्तमहाविभूतिपरमं यद्ब्रह्मरूपं हरे
मूर्तं ब्रह्म ततोऽपि तत्प्रियतरं रूपं यदत्यद्भुतम्।
यान्यन्यानि यथासुखं विहरतो रूपाणि सर्वाणि त
न्याहुः स्वैरनुरूपरूपविभवैर्गाढोपगूढानि ते ॥४

अर्थ—शान्त एवं अनन्त महान् विभूतियों से युक्त, परम
पदवाच्य भगवान का जो दिव्य स्वरूप है, उससे भी और अधिक
रहने वाला आपका अत्यन्त अनोखा साकार ब्रह्म रूप जो दिव्यमं
विग्रह है (जिसे परवासुदेव कहते हैं) सुख पूर्वक लीला करने वाले
भगवान के और जो दूसरे अनेक दिव्यमंगल विग्रह हैं उन सबको
देवि ! आपके अनुरूप अनुगुण वैभव वाले दिव्य रूपों से नित्य
महर्षिजन बताते हैं ॥४॥

आकारत्रयसंपन्नामरविन्दनिवासिनीम् ।
अशेषजगदीशित्रीं वन्दे वरदवल्लभाम् ॥५॥

अर्थ—अनन्याई शेषत्व, अनन्य,शरणत्व, अनन्य भोग्यत्व नाम
तीनों अकारों से युक्त, कमलपुष्प पर निवास करने वाली, सम्पूर्ण ज
की स्वामिनी, श्रीवरदराज भगवान की वन्दना करता हूँ । (एक
भगवान के ही सर्वविध शेष रहना अनन्याहं शेषत्व, उन्हीं के सर्व
शरण रहना अनन्याहं शरणत्व तथा भगवान के ही सर्वविध
रहना अनन्याहं भोग्यत्व है यही जीव का स्वरूप है)

श्रीवरदवल्लभास्तोत्रं सम्पूर्णम्

❀ श्रियैनमः ❀

❀ श्रीमते रुक्मिणी कृष्णाभ्यान्नमः । श्रीमतेभक्तवत्सलायनमः ❀

❀ श्रीमतेरामानुजायनमः ❀

ॐ श्रीमद्रामनुजचरणौ शरणं प्रपद्ये । श्रीमते रामानुजाय नमः । ॐ नमो भगवते रामानुजाय

"आचार्य द्वयमन्त्रस्य जपान्मोक्षमवाप्नुयात्"
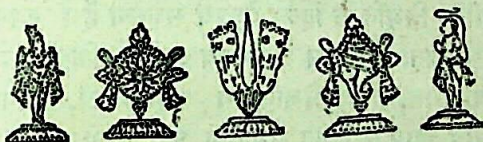
अस्मत्पूर्वाचार्याणां विरचितः

* अथश्रीप्रपत्तिसंग्रहः *

ॐ लक्ष्मीनाथ समारम्भां नाथयामुन मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

ॐ रामानुजाय विद्महे, फणि राजाय धीमहि, तन्नो लक्ष्मण प्रचोदयात् । श्रीरामानुजः शरणं मम ।

"इयं प्रपन्न गायत्री प्रपन्नानाञ्चमोक्षदा" ।

प्रकाशक

महाराज १०८ श्रीप्रयागनारायणजी के दिव्यदेश श्रीवैकुण्ठ मन्दिर के कैङ्कर्य प्रबन्धकर्ता सटीक "मुमुक्षुपड़ी, भगवदाराधनविधि" इत्यादि ग्रन्थों के प्रकाशक महाराज श्रीसरयूनारायणजी तिवारी (सरयोगी रामानुजदासजी) श्रीरुक्मिणी कृष्ण भवन पटकापुर कानपुर

द्वितीयावृत्ति १००० } सम्वत् २००४ श्रीवैकुण्ठोत्सव { उपरोक्त पतें से विना मूल्य प्राप्ति

मुद्रक—पं० रामचन्द्र ... ..., श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, अलोपीबाग प्रयाग ।

मङ्गलं पीत वस्त्राय हरकोदण्ड भङ्गिने ॥१०

कुब्जाङ्गराग सन्तुष्ट कंस भूप विनाशिने ।
चाणूर मुष्टिकारिघ्न मङ्गलं बन मालिने ॥११

बाणासुर भुजारण्य नाश दावानलायते ।
षोड़शस्त्री सहस्त्राणां मङ्गलं तोष कारिणे ॥१२

पाण्डु कौरवयोर्युद्धे दुष्ट भूपान्त कारिणे ।
रुक्मिणी प्राणनाथाय मम नाथाय मङ्गलम् ॥१३॥ इति

* अथश्रीलक्ष्मीनारायणमङ्गलाशासनम् *

अकार प्रति पाद्याय शेषिणे सर्व देहिनाम् ।
श्री भूलीला समेताय पद्मनाभाय मङ्गलम् ॥१॥

लक्ष्मीनारायणायास्तु सर्वेषामन्तरात्मने ।
ब्रह्मरुद्रेन्द्र सम्पूज्य पाद पद्माय मङ्गलम् ॥२॥

सनकादिक योगीन्द्रैरप्यचिन्त्य स्वरूपिणे ।
षाड्गुण्य परिपूर्णाय सत्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥३॥

संसार जलधौ मग्न जीव सन्तारहेतवे ।
धृत मत्स्यादि रूपाय लक्ष्मीनाथाय मङ्गलम् ॥४॥

समस्त लोक नाथाय भक्ताऽभीष्ट प्रदायिने ।
निगमैरप्यगम्याय भक्ताधीनाय मङ्गलम् ॥५॥

प्रयागनारायणेन तपसा संप्रसादितः ।
सर्वेषां दृग्गोचरोऽभूत्तस्मै श्रीशाय मङ्गलम् ॥६॥

श्रीभक्त वत्सलायास्तु शङ्ख चक्रादि धारिणे ।
स्वाश्रिताऽरि प्रविध्वंसे जागरुकाय मङ्गलम् ॥७॥

विष्वक्सेनाऽनन्त मुख्यैर्नतेयाऽदिभिस्तथा ।

नित्यैर्मुक्तैस्सेवितांघ्रि सरोजायास्तु मङ्गलम् ॥८॥
अव्याज कृपया लोकान्परिपातुं निजेच्छया।
भक्ताधीन प्रवृत्यर्चास्वरुपायास्तु मङ्गलम् ॥६॥
किरीट हार केयूर नूपुराद्यैर्विभूषणैः।
भूषिताङ्गाय रुचिर पीत वस्त्राय मङ्गलम् ॥१०॥
माघ शुक्ल चतुर्दश्यां पुष्यभे गुरुबासरे।
कानपूराख्य नगरे प्रादुर्भूताय मङ्गलम् ॥११॥
गुण सौंदर्य लावण्यैः पुंसां चितापहारिणे।
लक्ष्मीनारायणायास्तु नित्य श्रीर्नित्य मङ्गलम् ॥१२॥
मङ्गलाशासनमिदं कृतं यः प्रपठेत्सदा।
यागाप्यन् वेङ्कटेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१३॥इति०

श्री लक्ष्मीनारायणायनमः।

* अथश्रीगोदाम्बाप्रपति *

श्री भूमिनायक मनोहर देवि मान्ये,
श्री विष्णु चित्त तनये श्रित कामधेनो
मातस्समस्त जगतां महनीय कीर्त्ते,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणम्प्रपद्ये ॥१॥
श्री धन्वि नव्यनगरे तुलसी बनान्त,
र्देवीस्वयं समुदिता जनकात्मजेव।
भूम्यंशतो भुवन पावनि भू समृद्ध्यै,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणंम्प्रपद्ये ॥२॥
आरभ्य शैशव मसारत मच्युतांघ्रि,
भक्त्यै निरस्त विषयान्तर भाव बन्धैः।

श्री भू समानुपम दिव्य महानुभावे,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणम्प्रपद्ये ॥३॥
स्वीयोत्तमाङ्ग धृत माल्य समर्पणेन,
गोदेति नाम वहसि स्वयमच्युताय ।
भाग्याधिके परम पूरुष भाग्य लब्धे,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणम्प्रपद्ये ॥४॥
तत्त्वन्तवेषु धृत माल्य वरं मुकुन्द,
संगृह्य मूर्द्धनि वहन्मुमुदे नितान्तम् ।
तत्प्रेम वर्णक सुसुन्दर दिव्य मूर्ते,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥५॥
श्री नन्द गोप सुत सुन्दर दिव्य देह,
भोगाभिलाष कृत पूर्व चरित्र भाषे ।
कल्याणि लब्ध यदु नन्दन भोग पूर्णे,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणम्प्रपद्ये ॥६॥
श्रीमच्छठारि मुनि शक्त पितृत्व भावे,
नाथादि यामुन यतीश्वर पूज्य पादे ।
शौरेः पदाब्ज पर भक्ति मतां शरण्यम्,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥७॥
त्वत्सूक्ति सिद्ध ममलं पर मान्य मग्र्यम्,
हैयङ्गवीनमपि सुन्दर वाहवेऽपि ।
दातुर्य्य शक्त्यु पनिरेव रलं चकर्त्तुं,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥८॥
प्रावोधकी स्तुति वशीकृत वासुदेवे,

पद्मापते प्रथित भाग्य कृतावतारे ।
गोपाल बाल चरितेषु कृतानुरागे,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥९॥
कारुण्य पूर्ण हृदये कमला सहाये,
भक्त प्रिये परम पावन वाग्विहारे ।
श्री भट्टनाथ कुल मङ्गल दीप रेखे,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१०॥
बज्रारविन्द मकरध्वज शङ्ख चक्र,
छत्रादिलाञ्छित तलौ सरसीरुहाभौ ।
सर्वाश्रितार्त्ति हरणे सपदि प्रवीणौ,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥११॥
सौशिल्य कान्ति समताश्रित वत्सलत्वम्,
सौहार्द दान्त मुख सद्गुण राशि पूर्णे ।
पुण्ये पुरांध्रि पुरुषोत्तम हृद्य वृत्ते,
गोदे त्वदीय चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१२॥ इति०

* अथश्रीशठकोपस्वामिनःप्रपत्तिः *

श्रीमते शठजिन्मुनये नमः

श्री श्रीशपुष्कल कृपा विषयैर्यतीन्द्र,
पूर्णार्य यामुन मुखैः परमार्थ विद्भिः ।
पूर्वैः प्रसून सदृशैर्विधृतौ शिरोभि
र्भव्यौ शठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१॥
सञ्चिन्तने प्रशमिताश्रित सर्व पापौ,
प्रत्येक मुक्ति फलदाविव राग गर्भौ ।

सर्व प्रपन्न जन मानस राज हंसौ,
प्राप्यौ शठारि चरणौं शरणं प्रपद्ये ॥२॥
प्रक्षालनोदक पवित्रित ताम्रपर्ण्याम्,
निम्नोच्च वीचि तरलः सजलाशयोऽपि ।
मुक्ता भयत्व भयते नत पारिजातौ,
पूतौ शठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥३॥
पद्मा सहाय चरण स्मरण प्रमोद,
संपत्तृणी कृत विरञ्चि शिवादि भोगौ ।
श्री वैष्णवैस्सतत सेव्य तयानुभूतौ,
प्राप्यौ शठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥४॥
प्रत्यूषपूष किरणोन्मिष दम्बुजाभौ,
तत्तत्पुमर्थ पर सर्व जनाभिवन्द्यौ ।
दुर्लंघ्यभीम भववारिधि तारपोतौ,
भव्यौ शठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥५॥
अन्नादि धारकमशेष शरीर भाजां,
सन्तोषकं दधिपयः प्रभृति प्रशस्तम् ।
शब्दादि भोगमपि यस्तु सकृष्ण एव,
तादृक् शठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥६॥
भूलोक पूर्व तन पुण्य चयैर्महात्मा,
यःकारि नामक महा पुरुषात्मजोऽभूत् ।
कृष्णो यथैव वसुदेव सुतः प्रभूतः,
तादृक् शठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥७॥
सर्वाधिकार इति वैभव संभवाय,

वेदा अनादि निधना द्रविणोक्ति रूपाः।
दिव्य प्रबन्ध वपुषोयत आविरासीत्,
तादृक् शठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥८॥
श्री तिन्तिणी सलिल दायिजनाय सर्व,
मिष्टं ददाति यदधिष्ठित मूल देशा।
यद्दर्शनं प्रणय नित्य निवृत्तनिद्रा,
तादृक् शठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥९॥
सत्वोत्तरैः सतत सेव्य पदाम्बुजेन,
संसार तारक दयार्द्र दृगञ्चलेन।
सौम्योपयंतृ मुनिना मम दर्शितौतौ,
श्री मच्छठारि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१०॥ इति०

* अथश्रीप्रकालस्वामिनःमङ्गलाशासनम् *

श्रीमते प्रकाल स्वामिने नमः

श्री मदालि श्रीनगरी नाथाय कलि वैरिणे।
चतुष्कवि प्रधानाय परकालाय मङ्गलम् ॥१॥
लक्ष्म्या नियुक्तः कुमुद वल्या प्रिय चिकीर्षया।
आराध्य विष्णुभक्ताय परकालाय मङ्गलम् ॥२॥
श्रीरङ्ग दिव्य देशादीन् षट् प्रबन्धै मनोरमैः।
स्तुत्यास्तुतवते भूयात् परकालाय मङ्गलम् ॥३॥
सर्वस्वे र्विनियुक्तेऽपि राज्ञोऽर्थै श्चोदितैरपि।
पूजिताखिल भक्ताय-परकालाय मङ्गलम् ॥४॥
करुणाकर काञ्चीश सुग्रन्थ पुर नाथतः।
निवृत्तराज बाधाय परकालय मङ्गलम ॥५॥

भक्ताराधन सुप्रीताद् रङ्गधाम्नः कृपा करात् ।
प्राप्ताष्टाक्षर मन्त्राय परकालाय मङ्गलम् ॥६॥
सम्पूर्ण बाह्य विम्बेन-रङ्गिणो गोपुरादिकम् ।
षट् कैङ्कर्य कृतवते परकालाय मङ्गलम् ॥७॥
मङ्गलाशासनमिदं परकालस्य धीमतः ।
यो नरः पठते नित्यं सर्वान्कामानवाप्स्यति ॥८॥इति०

* अथश्रीरामानुजस्वामिनः प्रपत्तिः *

श्रीमते श्रीभाष्यकाराय नमोनमः

श्री कान्त दिव्य पद पङ्कज सक्त चित्त,
श्री कारि सूनु चरणाम्बुज भृङ्गराज ।
श्री वत्स चिह्न गुरु मानस राजहंस,
रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१॥
नाथार्य यामुन मुनीन्द्र कृपा कटाक्ष,
संलब्ध बोध सकल श्रुति मौलिवेद्य ।
पूर्णार्यवर्य करुणार्पित मन्त्ररत्न,
रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥२॥
श्री रङ्ग शेषगिरि वारण शैल नाथ,
पादार बिन्द परमानुभवैक शील ।
वेदान्त युग्म विशदी करणैक धूर्य,
रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥३॥
दिल्लीशनीतसुपनीय तदीय कन्या,
सम्माननेन पुनरर्पित यादवाद्रौ ।
सम्पत्कुमारमभिषिक्तवतस्तवेमौ,

रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥४॥
तुण्डीर भूमि पतिसात्कृत शङ्ख चक्रे,
शेषाचलाधिपतये किलते वितीर्य्ये ।
लोकैक नाथ गुरु भाव मुपेयुषस्ते,
रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥५॥
काञ्ची भवः कतिपये समये न दृष्टः,
काले न दृष्टि पथमेत्य पुनर्जनानाम् ।
मूको जगाद भवतः फणिराज भावं,
रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥६॥
वाह्यान्कुदृष्टि निवहानपि सन्निरस्य,
द्वैत विशिष्ट मखिल श्रुति मौलि वेद्यम् ।
निर्द्धार्य सात्विक जनाय निदर्शयन्तौ,
रामानुजार्य चरणौ शरणां प्रपद्ये ॥७॥
श्रीभाष्य नामकमिदं भवदीय भाष्यं,
श्री भाष्यकार इतिते भुवने प्रथास्यात् ।
इत्यादरेण किल सार दया स्तुतौते,
रामानुजार्य चरणौ शरणां प्रपद्ये ॥८॥
भक्ति प्रपत्तिरपि वो यदि दुष्करेस्तो,
रामानुजार्य चरणौ शरणां भजध्वम् ।
इत्याश्रितान्प्रति पुरा वरदोपदिष्टौ,
रामानुजार्य चरणौ शरणां प्रपद्ये ॥९॥
त्वत्पाद सेवन वशादधुना गुरूणां,
मुक्तिः करे स्थितिवती तु पुरा गुरूणाम् ।

मूर्धान्वयादिति वदन्ति विशुद्ध भावौ,
रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१०॥
आर्यैश्चतुष्क युत सप्तति पीठ संस्थैः,
संसेवितौ विमल संयमि सप्त शत्या।
अन्यैस्तदीय निवहैरनु भाव्य मानौ,
रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥११॥
रामानुजार्य रमणीय गुणाभिरामं,
रागादि दुर्गमगुरो यति सार्व भौमं।
सत्व प्रधान शरणागत वत्सलस्त्वं,
रामानुजार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१२॥ इति०

* अथ श्रीवरवरमुनिस्वामिनःप्रपत्तिः। *

श्री वरवर मुनये नमः

लोकार्य देशिक दया गुण पात्र भूत,
श्री शैलनाथ गुरुपाद सरोज सङ्गात।
प्राप्तात्मसद्गुण शमादि विशिष्टिरम्य,
जामातृ योगि चरणौं शरणं प्रपद्ये ॥१॥
श्रीलक्ष्मणार्य मुनि पाद सरोज युग्म १ ;
श्री माधवाङ्घ्रि वरलाभ निमित्त मासीत्।
यस्येह तादृगभिमान विदीश रम्य,
जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥२॥
भट्टार्य योगि प्रतिवादि भयङ्करार्य,
व ानाद्रि संयमि मुखाश्रित पाद पद्म।
य स्तादृगार्य वर सादर पूज्य रम्य,

जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥३॥
श्री रङ्ग दिव्य पुर मङ्गल नित्यवास,
सञ्जात हर्ष गुण सम्यदया गमेन।
सन्त्यक्त विष्णु-पद सूरि जनादि रम्य,
जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥४॥
शेषोथवा गरुड सैन्यधुरीण को वा,
श्रीनाथ योगि यति नायक यामुनोवा।
इत्यार्य्यं सन्तति विचिन्तित रूप रम्य,
जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥५॥
यः श्रीशठारि निगमान्त निगूढ भाव,
मत्यादरेण निज शिष्य वरैः समेतः।
व्याख्याति तादृगमितापि न सूक्ति रम्य,
जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥६॥
प्रातर्विकस्तरुणजु पङ्कज तुल्य शोभौ,
श्री पाद युग्म रजकिञ्जलकेन युक्तौ।
प्रत्यर्थिचित्त परिताप हरौ तु रम्य,
जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥७॥
पूर्वं शठारि गुरु दिव्य पुरे वसन्तौ,
पश्चात्प्रकृष्ट गुण रङ्ग कृताधिवासौ।
आत्मीय सञ्चरण पूत भुवौ तु रम्य,
जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥८॥
जन्मान्तरोऽपचित पुण्य चयैक लाभौ,
संमङ्गलातिशय नित्य निदान भूतौ।

सत्पुङ्गवादरित सङ्ग वरो तु रम्य,
जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥९॥
यन्निष्ठ पावन पयः कणवातलेश,
मन्निष्ठ पाप शत तूल इवाग्नि कल्प ।
तौ पुष्ट शिष्ट जन चित्तकृतौ तु रम्य,
जामातृ योगि चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१०॥ इति०

* अथश्रीराममङ्गलाशासनम् *

श्रीराम भद्राय नमोनमः

मङ्गलं कौशलेन्द्राय महनीय गुणाब्धये ।
चक्रवर्त्ति तनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥१॥
वेद वेदान्त वेद्याय मेघश्याम मूर्त्तये ।
पुंसां मोहन रूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥२॥
विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिला नगरी पते ।
भाग्यानां परिपाकाय भव्य रूपाय मङ्गलम् ॥३॥
पितृ भक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया ।
नन्दिताखिल लोकाय राम चन्द्राय मङ्गलम् ॥४॥
त्यक्त साकेत वासाय चित्रकूट निवासिने ।
सेव्याय सर्व यमिनां महावीराय मङ्गलम् ॥५॥
सौमित्रिणा च जानक्या चाप बाणासि धारिणे ।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ॥६॥
दण्डकारण्य वासाय खण्डितामर शत्रवे ।
गृध्र राजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम् ॥७॥
सादर शबरी दत्त फल मूलाभिलाषिणे ।

सौलभ्य परिपूर्णाय सत्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥८॥
हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्ट दायिने ।
वालि प्रमथनायास्तु महा वीराय मङ्गलम् ॥९॥
श्रीमते रघुवीराय सेतलङ्घित सिन्धवे ।
जित राक्षस राजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥१०।
विभीषण कृते प्रीत्या लङ्काभीष्ट प्रदायिने ।
सर्व लोक शरण्याय श्रीराघावाय मङ्गलम् ॥११॥
आसाद्य नगरी दिव्यामभिसिक्ताय सीतया ।
राजाधिराज राजाय राम भद्राय मङ्गलम् ॥१२॥
ब्रह्मादि देव सेव्याय ब्रह्मण्याय महात्मने ।
जानकी प्राणनाथाय रघुनाथाय मङ्गलम् ॥१३॥
श्री सौम्य जामातृमुनेः कृपयाऽस्मानुपेयुषे ।
महतेमम नाथाय रघुनाथाय मङ्गलम् ॥१४॥
मङ्गलाशासन परैर्मदाचार्यैः पुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ॥१५॥इति०

श्री बेंकटेश जी का स्तोत्र

ॐ नमो भगवते वेङ्कटेशाय

मुखे चारुहासं करे शङ्ख चक्रं,
गले रत्न माला स्वयं मेघ वर्णम् ।
कटौ दिव्य वस्त्रं प्रियः पीत वस्त्रं,
धरन्तं मुरारे भजे वेङ्कटेशम् ॥१॥
अजं निर्मलं नित्यमानन्द रूपम्,
जगत्कारणं सर्व वेदान्त वेद्यम्,

विभुं भावनं सच्चिदानन्द रूपं,
धरन्तं मुरारे भजे वेङ्कटेशम् ॥२॥
सदा भीत हस्तं मुदा जानु पाणिं,
लसं मेखला रत्न सोभा प्रकाशम् ।
जगत्पावनं पाद पद्मं रसालं,
धरन्तं मुरारे भजे वेङ्कटेशम् ॥३॥
श्रिया धिष्ठितं याम बक्षस्थलाङ्क,
सुरैर्बन्दितं ब्रह्म रुद्रादिभिश्च ।
शिवं शङ्करं स्वस्ति निर्वाण रूपं,
धरन्तं मुरारे भजे वेङ्कटेशम् ।४।
महा योग गम्यं परिभ्राज मानं,
चिदं विश्व रूपं महेशं सुरेशम् ।
अहो बुद्ध रूपं सदा बुद्धि गम्यं,
धरतं मुरारे भजे वेङ्कटेशम् ।५।
अहो मत्स्य रूपं तथा कूर्म रूपं,
महाकाल रूपं तथा नारसिंहम् ।
भृशं कुब्ज रूपं तथा जामदग्निं,
धरन्तं मुरारे भजे वेङ्कटेशम् ।६।
महा राघवं रावणं हन्त कारं,
सदा सिद्धि सेव्यं सुरेश वरेण्यम् ।
अहो कृष्ण रूपं तथा दैत्य नाशं,
धरन्तं मुरारे भजे वेङ्कटेशम् ।७। इति०

। इतिप्रपति सङ्ग्रहसमाप्तम् ।

भूल सुधार

"प्रकाशक परिचय" की तीसरी पंक्ति ब्रेकट में यों पढ़ें "मन्त्ररत्न-गद्दीवाले सरयोगी श्रीरामानुज श्रीवैष्णवदासजी" और ऐसा ही टाइ-टिल पृष्ठ में भी पढ़ें। उसी पृष्ठ में २२वीं पंक्ति के अन्त में इतना और भी पढ़ लेवें "और अपने आचार्य मुख द्वारा नाम पाते रहते हैं"

			अशुद्ध	शुद्ध
पृष्ठ	१०	पंक्ति ५ में	परकालास्य	परकालस्य
,,	१५	,, ७ ,,	श्रीराघावाय	श्रीराघवाय
,,	१५	,, १९ ,,	मुरारे	मुरारिं

पृष्ठ १६ पंक्ति २-६-१०-१४-१८-२२ में मुरारे के स्थान में मुरारिं पढ़ें

पृष्ठ १७ में श्रीवेङ्कटेश अष्टक का ८वाँ श्लोक भी पढ़ लेवें।

अहो वुद्धि रूपं महाकाल रूपं,
तथा कल्कि रूपं पुनश्शेष रूपं।
प्रभु शास्वतं लोक लीलावतारं,
अनन्तं मुरारिं भजे वेङ्कटेशम् ॥८॥

पुस्तक मिलने का पता :—

श्रीरुक्मिणी कृष्णदास
श्रीरेवतीराम श्रीप्रयागनारायण तिवारी
के पौत्र
महाराज श्रीसरयूनारायणजी तिवारी
(सरयोगी श्रीरामानुज श्रीवैष्णवदासजी)
श्रीरुक्मिणी भवन, पटकापुर, कानपुर।

हरिनाम ग्रहें भट सिंह
सनरकी १/१२९ आरसी
काशीत्ति शाप।